www.thearyasamaj.org

VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६५, ११ फरवरी–2017

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

www.thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

www.thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री अखिलेश निगम 'अखिल'	मंगलमय नव-वर्ष	कविता	२
डॉ० मनीष कौशल	वाल्मीकि रामायण में लोकमत की अवधारणा	लेख	[illegible]
विज्ञानरत्न लक्ष्मण प्रसाद	कर्मयोगी कलाम	लेख	७
डॉ० गीता अग्रवाल	भक्ति व उसकी रीति	लेख	१०
श्रीकृष्ण गोयल ध्यानयोगाचार्य	दिव्य मन्दिर	लेख	१३
डॉ० डायालाल मालदेभाई मोकरिया	ऋतुसंहार में वर्षा का वर्णन	लेख	१६
श्री सीताराम गुप्ता	ईंट का जवाब..............	लेख	१९
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	सुख-समृद्धि का आगार हमारा परिवार	लेख	२३
श्रीमती प्रोमिला भारद्वाज	छू लो शिखर	कविता	२७
डॉ० सरस्वती	उपनिषदों में वर्णित विद्या एवं अविद्या का स्वरूप	लेख	२८
सुश्री मीनाक्षी शर्मा	ध्वनि का स्वरूप (भर्तृहरि की दृष्टि में)	लेख	३४
श्री राजकुमार	रामायणकालीन कूटनीति के दो प्रमुख अंग (दूत और गुप्तचर)	लेख	३८
श्री जितेन्द्र कौशिक	वैदिक ईश्वरवाद की विशेषता	लेख	४४
श्रीमती प्रेमबिन्द्रा	एक याचना दिल से	लेख	४६
प्रो० इन्द्रदत्त उनियाल	पुस्तक-समीक्षा		४७
	संस्थान-समाचार		५१
	विविध-समाचार		५२

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६५ | होश्यारपुर, माघ २०७३; फरवरी २०१७ | संख्या ११

ये सर्पिषः संस्रवन्ति
क्षीरस्य चोदकस्य च।
तेभिः मे सर्वैः संस्रावैर्
धनं संस्रावयामसि।।
(अथर्व. १.१५.४)

(ये) जो (सर्पिषः) घृत (क्षीरस्य) दूध (उदकस्य) जल के प्रवाह (संस्रवन्ति) खूब बहते हैं, (तेभिः सर्वैः) हम उन सब (प्रवाहों के समान बहने वाली) (संस्रावैर्) प्रवाह (के रूप में) (धनं) धन-राशि को अपनी ओर (संस्रावयामसि) बहाकर ले आते हैं।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

www.thearyasamaj.org

मंगलमय नव-वर्ष

उमंग हो, उल्लास हो, मधुर मधुमास हो,
आपके जीवन की बगिया महकती रहे।
राष्ट्र का उत्थान हो, सदैव विजयी गान हो,
अपनी भारत माता नित चहकती रहे।
उन्नति के खुलें द्वार, सुख शान्ति हो अपार,
अनिष्ट, रोग, शोक की बर्फ पिघलती रहे।
'अखिल' की बार-बार, दिल से यही पुकार,
हृदय में देशभक्ति ज्वाला दहकती रहे।।

सकल विश्व में राष्ट्र का गूँजे नित जय गान।
'अखिल' हमारी कामना भारत बने महान।।

संदेश

आज तक अमृत-ज़हर क्या-क्या पिया है आपने?
इस जगत से क्या लिया, क्या-क्या दिया है आपने?
साँस स्वाहा हो रही है नित स्वार्थ के इस यज्ञ में,
किस तरह का आचमन अब तक किया है आपने?
सिर्फ़ अपनों के लिए तो आपने सजदे किये,
पर अनाथों के लिए क्या-क्या किया है आपने?
खाना-पीना, सोना-रोना क्या यही है ज़िन्दगी,
ज़िन्दगी को अब तलक कैसे जिया है आपने?
हर कदम पर स्वार्थवश बस शोर ही करते रहे,
क्या 'अखिल' औरों के हित भी कुछ किया है आपने?

– श्री अखिलेश निगम 'अखिल' आई.पी.एस., पुलिस अधीक्षक
उ.प्र. सतर्कता अधिष्ठान, टी.सी.वी.-४४, विभूति खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-२२६०१०

www.thearyasamaj.org

वाल्मीकि रामायण में लोकमत की अवधारणा

–डॉ० मनीष कौशल

आधुनिक शब्दावली में सामान्य हितों से सम्बन्धित प्रश्नों के विषय में मनुष्य की जो धारणायें होती हैं, उन्हें लोकमत अथवा जनमत की संज्ञा दी जाती है। लोकमत की अवधारणा एक आधुनिक विचार है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व भी रामायणीय शासक जनता के विचारों का आदर ही नहीं अपितु उनके अनुरूप अपने प्रशासकीय एवं व्यक्तिगत क्रियाकलापों को भी नियन्त्रित करने का प्रयत्न करते थे। रामायण युग में भी आज की भांति जनता तत्कालीन समस्याओं पर कुछ निश्चित विचार रखती थी। इन सर्वमान्य विचारों का इतना महत्त्व था कि राजा से लेकर प्रजा तथा देवताओं से लेकर मनुष्य, राक्षस आदि सभी इससे प्रभावित होते थे।

रामायणयुग में लोकमत के निर्माण में जिन विभिन्न संस्थाओं द्वारा योगदान दिया जाता था। उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान तत्कालीन धर्मसम्बन्धी विचारों का था। किसी भी समस्या के सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण अपनाया जाये, इसके लिए प्राचीन वैदिक-साहित्य एवं धर्म-ग्रन्थों की ओर देखा जाता था। उदाहरणार्थ चतुर्वर्ण-व्यवस्था का सिद्धान्त उस युग में सर्वमान्य था। इसके पक्ष में लोकमत के निर्माण का आधार ऋग्वेद में वर्णित पुरुषसूक्त था।[१] रामायण युग में ऋषि-मुनियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। इनके द्वारा बताई गई व्यवस्थायों को सभी लोग समानरूप से स्वीकार करते थे।[२] अत: जब भी कोई समस्या आती थी तो उसके निवारण के लिए इन्हीं से उपाय पूछा जाता था।[३] रामायण युग में लोकमत को प्रभावित करने का एक शक्तिशाली साधन ये ऋषि-मुनि भी थे। जब राम वन को चले गये तथा महाराज दशरथ की मृत्यु हो गयी, तो यह समस्या उत्पन्न हो गई कि अब राजा किसे बनाया जाये? लोकमत प्रारम्भ से ही राम के पक्ष में था।[४] परिस्थिति की

१. ऋग्वेद, १०.९०.१२
२. आज्ञाप्योऽहं महर्षीणां सर्वकामकर:सुखम्। वा.रा., ७.६०.१३.
३. वा. रा., २.६७.२-४
४. वा. रा., २.२.४८.

www.thearyasamaj.org

विषमता को देखते हुए सभा ने यह निर्णय किया कि राजगुरु महर्षि वशिष्ठ जिसे चाहें राजा बनावें।[५] इस निर्णय के मूल में सम्भवत: यही भावना थी कि महर्षि वशिष्ठ द्वारा लिए गए निर्णय का जनता विरोध नहीं करेगी।[६]

लोकमत के निर्माण में सभा का योगदान भी महत्त्वपूर्ण था। यही कारण है कि महत्त्वपूर्ण निर्णयों को लेने से पूर्व राजा सभा में उसकी घोषणा कर जनमत जानने का प्रयत्न करते थे।[७] दशरथ ने भी राम को युवराज बनाने से पूर्व सभा से उनके विचार एवं सहमति मांगी थी-

यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्।।[८]

सेनापति, नगर और जनपद के प्रतिनिधियों ने परस्पर सलाह करके राजा दशरथ से कहा कि राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करें।[९] इससे यह स्पष्ट है कि राम को युवराज बनाने से पहले राजा दशरथ ने सभासदों की राय को जान लिया था। इसका उद्देश्य एक ओर उन्हें अपने पक्ष में करना था, दूसरी ओर यह जान लेना था कि लोकमत क्या है तथा उनके इस कार्य की क्या प्रतिक्रिया होगी?

रामायणकाल में जनमत को कितना महत्त्व दिया जाता था, इसके अनेकों उदाहरण राम द्वारा स्थान-२ पर प्रस्तुत किये गये हैं। सर्वप्रथम जब राम को वनवास की आज्ञा दी गई तो उन्होंने उसे शान्तिपूर्वक स्वीकार कर लिया। यदि राम चाहते तो दशरथ की आज्ञा का उल्लंघन भी कर सकते थे, किन्तु उन्होंने पिता की आज्ञा मानना अपना धर्म बता कर उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया-

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम्।।[१०]

राम समझते थे कि यदि अयोध्या के युवराज एवं भावी शासक होकर भी उन्होंने युग-धर्म का पालन नहीं किया, तो हो सकता है कि लोग उनके विरोधी हो जायें, और यदि उन्होंने चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार कर लिया तो सभी लोग उनका आदर करेंगे।[११] अपने इस कार्य से राम ने सभी का हृदय जीत लिया और वन से लौटने के पश्चात् अनेकों वर्ष तक निष्कंटक अखण्ड राज्य किया।[१२]

अरण्यकाण्ड के अनुसार जब रावण सीता को हर ले गया तब राम को सबसे अधिक दु:ख इस बात का था कि आज कैकेयी का मनोरथ सफल हो जायेगा, सारा संसार मुझे

५. वा. रा., २.६७.३८.　६. वा. रा., २.६७.३७.　७. वा.रा., २.२.१०.
८. वा.रा., २.२.१५.　९. स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिवम्। वा.रा., २.२.२१.
१०. वा.रा., २.२१.४१.　११. वा. रा., २.२१.६२-६३.　१२. वा.रा., ६.१२८.

www.thearyasamaj.org

पराक्रमहीन कहेगा।[१३] अत: उन्होंने निश्चय किया कि वह सीता के बिना अयोध्या नहीं लौटेंगे। इससे स्पष्ट है कि राम जैसा साहसी व्यक्ति भी इस बात से भयभीत था कि संसार उसे कायर और बलहीन समझेगा।[१४] इसी प्रकार रावण-वध के पश्चात् जब सीता राम के पास आई तो राम जनापवाद के भय से दुविधा में पड़ गये।[१५] तब सीता ने सतीत्व की परीक्षा के लिए जब अग्नि में प्रवेश किया तो उस समय अग्निदेव सीता को लेकर अग्नि से निकल आये और उन्होंने राम को बताया कि सीता निष्पाप है।[१६] तब राम ने स्वयं कहा कि जनता को सीता की पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए यह परीक्षा आवश्यक थी। इसलिए मैंने अग्नि में प्रवेश करती हुई सीता को नहीं रोका-

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः।
उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम्।।[१७]

स्पष्ट है कि रामायणकाल में राजा लोग यह बात जानने के लिए चिन्तित रहा करते थे कि जनता में उनके विषय में कौन-सी शुभ और अशुभ बातें की जाती हैं। राम को लंका में ही सीता के विरुद्ध उठ खड़े होने वाले अपवाद का भय था और इसीलिए उन्होंने जनमत को ही महत्त्व दिया, क्योंकि राम ने स्वयं कहा है कि, 'मैं लोकनिन्दा के भय से अपने प्राणों, भाईयों और सीता को भी त्याग सकता हूँ।'[१८] अत: उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया कि वह सीता को राज्य की सीमा से बाहर छोड़ आये।

केवल राम के द्वारा ही नहीं, अपितु भरत के द्वारा भी जनमत को ही महत्त्व दिया गया। जब दशरथ की मृत्यु पर भरत को ननिहाल से बुलाया गया तो उन्होंने देखा कि अयोध्या नगरी जंगल की भाँति लग रही है।[१९] चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था और केवल मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी, वृक्ष आदि भी शोभा से रहित हो गये हैं। नगर की दशा को देख सम्भवत: भरत यह समझ गये कि अयोध्या में लोकमत उनके विरुद्ध हो गया है।[२०]

उनके मन में सबसे पहले यह इच्छा हुई कि वह किसी प्रकार राम के वनगमन की घटना से अपने को निर्दोष सिद्ध करें। यही कारण था कि जब राजगुरु ने उन्हें राजा बनने के लिए कहा तो भरत ने इसे

१३. वा.रा., ३.६२.११. १४. वा.रा., ३.६२.१२. १५. वा.रा., ६.११५.११.
१६. वा.रा., ६.११८.६ १७. वा.रा., ६.११८.१७. १८. वा.रा., ७.४५.१४.
१९. वा.रा., २.७१.२४.
२०. द्रष्टव्य: अयोध्या काण्ड के ४८वें सर्ग में दिये गये वर्णन से स्पष्ट है कि अयोध्या नगरी की इस दशा का कारण राजा दशरथ की मृत्यु नहीं था। वास्तव में राम के वनवास के लिये जाने से यह स्थिति उत्पन्न हुई थी।

www.thearyasamaj.org

दृढ़तापूर्वक अस्वीकृत कर दिया और यह कहा कि वह स्वयं राम को वन से लौटाने के लिए जायेंगे।[२१] भरत के इस निश्चय का प्रभाव उनकी इच्छानुसार ही पड़ा। अयोध्या के प्रजाजन, जिन्होंने आते समय भरत का स्वागत नहीं किया था, इस समाचार को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए तथा राम को वापस लाने के लिए भरत के साथ वन भी गये।[२२] इस वर्णन से स्पष्ट है कि रामायणकाल में राजा उसी समय तक निर्भय होकर शासन कर सकता था, जब तक लोकमत उसके पक्ष में रहता था। लोकमत के विरुद्ध हो जाने पर यह आवश्यक था कि यदि वह शासन करना चाहता है तो अपने आचरण एवं व्यवहार से उसे अपने पक्ष में कर ले।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि आधुनिक समय की तरह रामायणयुगीन राजा भी जनमत का बहुत ध्यान रखते थे। वे जनमत को जानकर उसके अनुरूप अपने क्रियाकलापों को नियन्त्रित करते थे अथवा विभिन्न उपायों द्वारा अपने पक्ष में जनगत बनाने का प्रयत्न करते थे।

– श्रीमती उर्मिला देवी आयुर्वैदिक महाविद्यालय, खड़कां, होशियारपुर।

२१. वा. रा., अयोध्या काण्ड, ७९. ११-१४

२२. वा. रा., २.८२.२४-२६.

www.thearyasamaj.org

कर्मयोगी कलाम

–विज्ञानरत्न लक्ष्मण प्रसाद

मेरा ऐसा मानना है कि डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम एक तपस्वी होने के साथ-साथ, एक कर्मयोगी भी थे। यही कारण है कि वे अपने ज़ीवनकाल में किसी वस्तु के अभाव से न विचलित हुए और न उन्होंने अपने स्वीकृत कार्य को ही बीच में छोड़ा। वे जैसे-तैसे कार्य करते हुए बड़ी निष्ठा के साथ, अपनी लगन, कड़ी मेहनत और कार्य-प्रणाली के बल पर असफलताओं को झेलते हुए आगे बढ़ते गए। उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में असाधारण सफलताएं प्राप्त कीं। उनकी गणना अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों में की जाती है। सामान्य आविष्कारक के रूप में, उनके जीवन से मैं बहुत ही ज्यादा प्रभावित हुआ। मैंने उनको अपना आदर्श माना। स्वाभाविक था कि मुझे उनसे मिलने की इच्छा हुई परंतु इतने व्यस्त एवं बड़े वैज्ञानिक से मिलना आसान काम नहीं था। सौभाग्यवश २ जनवरी, २००० को दिल्ली से पूना जाते हुए हवाई जहाज में मुझे डॉ० कलाम से मिलने का एक सुअवसर प्राप्त हुआ। १०-१५ मिनट की मुलाकात से ही मैं उनकी सादगी, सद्‌भावना, शालीनता, सौम्यस्वभाव आदि से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

उनकी पुस्तकों के अध्ययन से मुझे पता चला कि वे गुणों के भंडार हैं। अदम्य साहस के साथ-साथ शालीनता एवं सद्‌भावना के गुण उनमें कूट-कूट कर भरे थे। वे सरस्वती-पूजा के साथ विज्ञान के प्रति पूर्णरूप से समर्पित थे। उनका स्वभाव कोमल था, वे सबके प्रति सद्‌भावना रखते थे। सादगी, शालीनता एवं सौम्यता उनके विशेष गुण थे। दूसरों को सम्मान देने के साथ-साथ वे उन्हें अच्छे कार्यों के लिए प्रेरित करते थे। अपनी सफलताओं का श्रेय वे स्वयं न लेकर अपने माता-पिता, गुरुजनों एवं वैज्ञानिक अधिकारियों को देते थे। उनकी सम्मतियों को वे, संस्मरण के रूप में अपने लेखों एवं पुस्तकों में उद्‌धृत करते थे। वे सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान करते थे। बड़े-बूढ़ों का सदैव आदर एवं सम्मान करते थे। जहां वे बच्चों से प्यार करते थे उनका चहुँमुखी विकास देखना चाहते थे, वहीं वे भारत को विकसित राष्ट्र

www.thearyasamaj.org

बनाने की 'संकल्पना' रखते थे। कलाम साहब ने अपने आचरण से समाज के सभी वर्गों को प्रभावित किया। इन्हीं विशेष गुणों के कारण वे देश के सर्वोच्च पद पर आसीन हुए।

कलाम साहब ने देश की सुरक्षा से संबंधित लगभग २० बड़ी-बड़ी परियोजनाओं पर कार्य ही नहीं किया बल्कि उनका सफल नेतृत्व भी किया। प्रत्येक परियोजना में नवीनीकरण के प्रयोगों के साथ उन्होंने नयी प्रौद्योगिकियाँ भी विकसित की थीं। इन्हीं विशेष गुणों के कारण उन्होंने वैज्ञानिक समुदाय में उच्चस्थ स्थान बनाया। वास्तव में डॉ० कलाम एक सफल महान् वैज्ञानिक के साथ-साथ एक महान् नवप्रवर्तक भी थे। जब मैंने नवीनीकरण एवं नवप्रवर्तन के महत्व पर सोचना आरंभ किया तो मुझे महसूस हुआ कि हमको प्रत्येक क्षेत्र में नवप्रवर्तन की आवश्यकता है जो हमारी अनेक जटिल समस्याओं का हल कर सकता है। मैंने सोचा कि क्यों न इसके महत्त्व का समाज में प्रचार और प्रसार किया जाय जिससे समाज में नवप्रवर्तन एवं नवीनीकरण के प्रति लोगों में चेतना जाग्रत हो।

इन विचारों को ध्यान में रखते हुए २८ फरवरी २००० को 'विज्ञान दिवस' के अवसर पर मैंने प्रत्येक वर्ष १५ अक्टूबर को 'नवप्रवर्तन दिवस' मनाने का विचार किया। इस पर अपने कुछ मित्रों एवं शुभ-चिंतकों से विचार-विमर्श भी किया। सभी को यह विचार अच्छा लगा और इस कार्य को करने में मुझे पूर्णरूप से सहयोग देने का आश्वासन भी दिया। इस दिवस को १५ अक्टूबर का चयन किए जाने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण है। १५ अक्टूबर लब्धप्रतिष्ठित वैज्ञानिक प्रौद्योगिकविद् डॉ० कलाम साहब का जन्मदिन है। मेरे विचार में नवप्रवर्तन की चेतना संचरित करने के लिए इससे अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई दिवस हो ही नहीं सकता।

पिछले १५ वर्षों (सन् २०००) से मेरे निर्देशन में हर वर्ष १५ अक्टूबर को 'राष्ट्रीय नवाचार दिवस' विभिन्न ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में आयोजित किया जाता रहा है। इन अवसरों पर जो वैज्ञानिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं उनसे समाज में वैज्ञानिक जागरूकता उत्पन्न हुई है। बच्चों की वैज्ञानिक सोच में वृद्धि हुई है। इसके अलावा इससे न सिर्फ नव-प्रवर्तन आंदोलन को सही दिशा मिली वरन् लाखों बच्चों व किशोरों, युवा छात्रों के मस्तिष्क को तेजस्वी बनाने में सहायता भी मिली है। प्रत्येक नवप्रवर्तन दिवस के अवसर पर आरंभ के ५/६ सालों से एक सुंदर स्मारिका प्रकाशित की गयी जिसमें नवप्रवर्तन से संबंधित अनेक लेख एवं नवप्रवर्तकों के

www.thearyasamaj.org

सफल कार्यों के विषय में सूचना प्रकाशित की जाती थी। साथ ही वैज्ञानिकों और देश के महान् नेताओं के संदेश भी छापे जाते थे। उसके उपरांत देश की सबसे प्राचीन 'विज्ञान पत्रिका' प्रत्येक वर्ष अक्टूबर माह का अंक 'नवाचार विशेषांक' के रूप में सन् २००७ से लगातार प्रकाशित कर रही है। मेरे अनुरोध पर इस वर्ष २०१५ का 'विज्ञान पत्रिका' का अक्टूबर माह का अंक पूर्णरूप से डॉ० कलाम को समर्पित किया जा रहा है। मैं डॉ० कलाम को एक कर्मयोगी तथा स्वप्नद्रष्टा के रूप में मानते हुए उनके प्रति अपने भाव इस प्रकार प्रकट करता हूं-

'वास्तव में डॉ० कलाम, महात्मा गाँधी की भाँति ही कर्मयोगी एवं स्वप्नद्रष्टा हैं। गाँधी जी स्वतंत्र भारत के स्वप्नद्रष्टा हैं। जबकि डॉ० कलाम स्वावलंबी, स्वयं समर्थ विकसित भारत के स्वप्नद्रष्टा हैं। उनकी सादगी, शालीनता, अर्थशुचिता, नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं स्वदेश के प्रति गहनतम प्रेम और इन सबके ऊपर ईश्वर के प्रति अटूट आस्था, उनको भारत के एक और गाँधी के रूप में स्थापित करेगी। महात्मा गाँधी के सभी मौलिक गुण उनमें विद्यमान हैं।

नियंत्रित कर्तव्यशील कार्यकलापों के लिए 'गीता' गाँधी जी की मार्गदर्शिका शक्ति थी, इसी प्रकार चमत्कारी उपलब्धियों के लिए 'गीता' डॉ० कलाम की ऊर्जा की सतत शीर्ष प्रवाहमयी निर्झरिणी है। जैसे गाँधी जी अपने महान् कार्यों से महात्मा बन गए थे वैसे ही 'गीता' और 'कुरान' की सद्शिक्षाओं के अनुरूप अपने कृतित्व एवं निष्ठा के फलस्वरूप कुछ काल के बाद डॉ० कलाम भी संत कलाम के रूप में जाने जायेंगे।

ऐसे अनूठे राष्ट्रपति के स्वप्नों को साकार करने के लिए प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य बनता है कि वे अपना कार्य अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में पूर्ण ईमानदारी, मेहनत, निष्ठा, समर्पण-भावना से करें और गलत कामों को न करें और न बढ़ावा दें। तभी यह देश २०२० तक एक विकसित एवं बलशाली राष्ट्र बन सकता है। हम सब उनके जीवन से बहुत कुछ शिक्षा एवं प्रेरणा लेकर देश एवं समाज को आगे बढ़ाने में योगदान कर सकते हैं, जो समय की पुकार है।'

कलाम साहब के जाने के बाद लोगों ने उन्हें अनेक सम्मानित उपाधि एवं शीर्षक जैसे- राष्ट्ररत्न, कर्मयोगी, युगद्रष्टा, राष्ट्रनायक, राष्ट्र विभूति, राष्ट्रगौरव, राष्ट्रऋषि, भारतीय ऋषि परंपरा के वाहक, देश के प्रेरणास्रोत, संत सरीके वैज्ञानिक, सबके प्यारे कलाम, चमत्कारी प्रतिभा आदि रूपों में पहचाना और उसी के अनुसार अपनी-अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और सम्पूर्ण राष्ट्र ऐसे कर्मयोगी को भावपूर्ण श्रद्धांजलि देना कैसे भूल सकता है।

- ३/६, मैरिस रोड, मैण्डू कम्पाउण्ड, अलीगढ़ (उ०प्र०) मोबा: ०९३५८६२६९१७

www.thearyasamaj.org

भक्ति व उसकी रीति

–डॉ० गीता अग्रवाल

कलियुग केवल नाम अधारा
सुमर सुमर नर उतरहि पारा।।

तुलसीदास जी ने इस युग में केवल नाम-जप को ही भक्ति करने का प्रधान साधन बताया है। हमारे सौभाग्य और प्रभु की अहैतुकी कृपा से हमें यह मनुष्य शरीर मिला है। इसका ध्यान रखते हुए हमें उस आनन्द-स्रोत को प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। जिससे प्राणी को अतीव शान्ति मिल सके। प्राणी इस संसार की माया में भूलकर दुःख-सुख की प्राप्ति करते रहते हैं और सांसारिक विषयों में फंसते चले जाते हैं और उस परमात्मा को भूल जाते हैं जो गर्भावस्था से ही हमारी रक्षा करता है।

भगवान् ने तो कृपा कर अच्छा शरीर दिया, जीने के साध । दिये। जिससे हम संसार में रहते हुए भी ऐसे कर्म करें जिससे प्रभु को भी प्रगट कर सकें केवल पेट भरने के लिए ही प्रयत्न करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं। पेट तो पशु भी भर लेते हैं।

अतः ऐसे मनुष्यों के लिए सद्गुण का साथ आवश्यक है। जो वह उपदेश दें, उसे सुनकर ही न छोड़ दें, जीवन में लगाएं। दुःख-सुख तो आते-जाते ही रहते हैं परन्तु वह इस शरीर की अवस्था है जिसे भक्ति का रस लग जाता है उ.को ये अवस्थाएं नहीं सतातीं। वह मनुष्य जान लेता है कि यह तो शरीर के दुःख हैं आत्मा में कुछ भी नहीं। आत्मा तो भगवान् का रूप है, आदि अनन्त आनन्द स्वरूप चेतन है। शरीर तो जाने वाला है इसके लिए क्या सोचना। मान-अपमान, हानि-लाभ यह संसार में चलता है परंतु अलौकिक संसार में जब हम पहुंच जाते हैं तो यह कुछ नहीं फिर तो आनन्द ही आनन्द है। भगवान् से हमारी यही प्रार्थना हो कि प्रभु कोई भी परिस्थिति आये चाहे मेरा सब कुछ नष्ट हो जाये परन्तु मेरी बुद्धि को सन्मार्ग पर लगाये रखना।

भक्ति को पाने के लिए मन पर नियन्त्रण होना आवश्यक है। परनिन्दा और पराई वस्तु का लोभ, आकांक्षा, तृष्णा इन को मन से परे करना पड़ेगा। जैसे शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार आत्मा को भी भोजन चाहिए। इसे शुद्ध सात्विक, पवित्र विचारों का भोजन चाहिए। यह आत्मा इन्द्रियों से जकड़ा हुआ और मन से बंधा होता है। इसको मन से मुक्त करके सदाचार और भक्ति का भोजन मिलेगा और आत्मा बलवान् हो जायेगी और हमें भक्ति की ओर अग्रसर करेगी। इसके लिए शास्त्रों में छः बातें लिखी हैं उनका पालन करते हुए हम मन को भली

www.thearyasamaj.org

भांति वश में कर सकते हैं। जैसे यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा। इन को हम एक-२ करके ही पार हो सकते हैं। यदि चाहे हमें कुछ भी न करना पड़े और भगवान् का दर्शन हो जाये तो बड़ा कठिन है। मन में विचार तो आयेंगे ही क्योंकि यह तो उसका आचरण है परन्तु इधर-उधर की बातों से हटा कर प्रभु की ओर ले जायें नाम जप के द्वारा भक्ति करायें तो यह मन हमारा मित्र बन जाता है। हम सोचें कि घर में ऐसा नहीं हो सकता वन, उपवन में चले जायें ऐसा नहीं है। घर में रहो या वन में। विचार तो आयेंगे उनको तो रोकने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है। मन में दिनभर हम लोभ, मोह अहंकार की गन्दगी डालेंगे तो यह वैसा ही सोचेगा अच्छा सोचने से मन भी अच्छा होता है।

यदि हम ज्ञान की ज्योति मन में जलाये रखेंगे तभी मन को लगाम लगा सकते हैं। इसके लिए ऊपर बताये यम-नियम की पालना और सत्संग आवश्यक है। भक्ति करते रहे और छल-कपट भी करते रहे तो कैसे चलेगा। सब में प्रभु का दर्शन करें। जो व्यवहार अपने लिए चाहते हैं वैसा ही दूसरों से करें। हम पत्थर में भगवान् देखते हैं परन्तु दूसरों में नहीं देखते। हम प्रभु की कृपा को समझें और चेतनप्रकृति को देखकर समझें कौन सब कर रहा है। तब हम शुभ कर्म करते जायें यही पूजा है। सदैव याद रखें यह घर हमारा नहीं है हमें अपने घर जाना है यह जीवन थोड़े दिन का है पुण्य का संचय करें पाप का नहीं। इस थोड़े से जीवन के लिए अपने कर्म न बनायें पुण्य का खाता खोलें जिससे अगला जन्म न लेना पड़े तो आवागमन से छूट जायें।

निष्काम भाव से किये गये कर्म ही भक्ति बन जाते हैं। यदि हम सेवा करते समय भी राग-द्वेष में रहें और कर्तापन का भाव रखें तो वह कार्य भक्ति नहीं हो सकती। विकाररहित व्यक्ति स्वयं में मस्त रहता है और परमात्मा का रूप चारों तरफ देखता है किसी से बुरा व्यवहार व घृणा नहीं करता उसके इस रूप से हर समय प्रभुभक्ति होती है और एक दिन भक्ति का स्वाद लेते-२ वह प्रभु को भी प्रकट कर पाते हैं। भक्ति में अपार शक्ति है यदि सच्चे सरल हृदय से की गई हो।

जिसने इन्द्रियों को वश में करके इन्द्रियों को अर्न्तमुखी बना लिया है वह जगत् में रहता हुआ भी निर्लिप्त है। आत्मा को जान लेने के बाद भक्तिरस का स्वाद उसे स्वत: आने लगता है और संसार फीका लगता है। इन्द्रियों का निग्रह मन से और मन का निग्रह बुद्धि से होता है। यदि मन से अलगाव आ गया तो भक्ति भी आ गई समझो क्योंकि यह मन ही पग-पग पर विषयों में फंसाता है इसे भगवान् से लगाकर रखें तो नहीं भागेगा। यह तटस्थ होना ही अध्यात्मसाधना है किन्तु जीवन के व्यावहारिक कार्यों में तटस्थ होने से काम नहीं चलेगा उसमें तो जागरूक होकर सहयोगी बनना पड़ेगा। अनुशासन के साथ सत्य का

www.thearyasamaj.org

निर्णय कर्त्तव्य की निष्ठा है और सच्ची पूजा है। संसार की माया समुद्र के खारे पानी के समान है इससे प्यास नहीं बुझाई जा सकती, प्यास तो मीठे पानी से ही बुझेगी। इसी प्रकार संसार में जितनी भी कामना कर लें सच्चा सुख तो सत्संग व भक्ति में ही मिलेगा। निरन्तर भगवान् की स्मृति ही भगवत्-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है दीन और आर्तभाव से पुकारने की आवश्यकता है-

सन्मुख होई जीव मोई जबही,
जन्म कोटि अघ नासहि तबही।

केवल भाव में भजने की आवश्यकता है उसकी कृपा से सब बाधा स्वयं ही दूर हो जाती हैं। ऐसा विचार कर सन्देह को दूर करके भगवान् का भजन करें। इससे सब कार्य स्वयं ही होते चले जाते हैं। भागवतपुराण में भगवान् ने कहा है कि अवहेलना से भी मेरा नाम जो लेता है उसके पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं।

भक्तिमार्ग भगवान् को पाने का सुगम मार्ग है परन्तु अतिकठिन भी है। जो भक्ति के मर्म को समझकर भगवान् को पाने के लिए तड़प उठे और कुछ ध्यान न रहे उसकी सार प्रभु स्वयं लेते हैं और उसके लिए वह भक्त भी ऐसा ही हो, कोई भी दु:ख-बाधा आने पर घबरायें नहीं क्योंकि दु:खद कारणों को भेजकर प्रभु भक्त की परीक्षा लेते रहते हैं। गुरु इसके लिए युक्तियां बताते हैं। सबसे पहले भक्ति के लिए अहंकार को दूर करना आवश्यक है। जब तक भक्त के मन से अहंकार नहीं हटता प्रभु परेशानी भेजते ही रहते हैं। इसके लिए दीनता समर्पण और भगवान् के लिए इच्छा।

भक्ति तभी सफल होती है जब वह हर-हाल में सतुंष्ट रहे, संसार को अंसतोष का घर जानकर छोड़ता चले नहीं तो सभी इच्छाएं तृष्णा का रूप ले लेती हैं। फिर तो कभी प्यास नहीं बुझती, भक्ति कैसी।

प्रभुभक्ति के अन्य उदाहरण न लेकर केवलमात्र रामायण में प्रस्तुत शबरी की भक्ति को लें तो स्पष्ट हो जायेगा कि एक भक्त अपने भगवान् को सन्मुख आया देखकर किस प्रकार आनन्दविभोर हो जाता है और उसको अपने सन्मुख अपने आराध्य को देखकर कुछ सुध-बुध ही नहीं रहती। पर दूसरी ओर भक्त के आराध्य भगवान् की क्या स्थिति होती है वह अपने भक्त की भावना में किस प्रकार बह जाते हैं, यह उससे स्पष्ट हो जायेगा। अत: अगर संसार में रहते हुए भक्तिमार्ग के द्वारा भगवान् को पाना है तो प्रत्येक भक्त को शबरी बनना पड़ेगा जब वह शबरी जैसा बनेगा तो भगवान् तो उसके अधीन स्वत: हो जायेंगे। यही सच्ची भक्ति है जिसमें भक्त और भगवान् अपने-अपने स्वत्व को छोड़कर साधारणीकरण द्वारा समान विचार तथा भाव वाले हो जाते हैं।

- ३०६, शिवा अपारटमैण्टस, सैक्टर-२१/डी, फरीदाबाद (हरियाणा)

www.thearyasamaj.org

दिव्य मन्दिर

–श्रीकृष्ण गोयल ध्यानयोगाचार्य

मनुष्य का शरीर परमात्मा का अतिसुन्दर तथा वैभवशाली दिव्य मन्दिर है, जिसके भीतर सच्चिदानन्द परमात्मा विराजमान होकर मनुष्य की आत्मा, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा ज्ञान-इन्द्रियों, कर्म-इन्द्रियों एवं प्राणशक्ति द्वारा इस शरीर-रूपी मन्दिर का संचालन कर रहे हैं। जिसका मनुष्य को अज्ञान के कारण बोध नहीं है, अत: मनुष्य परमात्मा के दिव्य गुणों तथा शक्तियों से वंचित होकर जीवनभर दु:ख भोगता है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन से असन्तुष्ट है तथा किसी न किसी प्रकार जीवन को भार समझ कर अपनी आयु को बिता रहा है। लगभग समस्त मानवता का जीवन एक नरकालय बन गया है जिसके परिणामस्वरूप मानवता एक पीड़ादायक घुटन का वर्तुल बन गई है। इस विपत्ति से बचने के लिए कुछ लोग नशों का सहारा लेते हैं, जो शुरु में प्रिय प्रतीत होते हैं, परन्तु अंतत: अतिहानिकारक तथा घातक सिद्ध होते हैं। कुछ लोग घर-बार छोड़कर अपने कर्तव्य को त्याग कर साधु-संन्यासी बन जाते हैं, परन्तु कुछ सुखद अनुभूति नहीं होती अपितु अकर्मण्यता उपजती है। विश्व की समस्त समस्याओं, विपत्तियों, आतंकवाद, हिंसात्मक घटनाओं, चोरी, डाके, लूटमार तथा बलात्कार आदि का मूल कारण मनुष्य का अपने शरीररूपी मन्दिर की शक्तियों के प्रति अज्ञान है।

अपने जीवन को आनंदमय, प्रेममय, शक्तिशाली तथा कर्मकुशल बनाने के लिए हमारे लिए शरीररूपी दिव्य-मन्दिर के समस्त घटकों को जानना तथा समझना अति आवश्यक है ताकि हम तुरन्त अपने कल्याण में संपूर्ण तन्मयता से कार्य आरम्भ कर दें।

परमात्मा अनंत गुण ज्ञान शक्तियों के स्रोत हैं। हमारी आत्मा परमात्मा का अंश है तथा यह आत्मा परमात्मा से संयुक्त होकर शांति, शक्ति, आनंद, प्रेम, प्रकाश, अमृत, माधुर्य, सौन्दर्य, उत्साह, निर्भीकता, देशप्रेम, मानवता का प्रेम, कर्मकुशलता आदि असीम मात्रा में प्राप्त करके केवल अपना ही नहीं अपितु समस्त मानवता का कल्याण कर सकती है।

अहंकार परमात्मा के अज्ञान के कारण होता है, जिसके कारण मनुष्य अपने आपको दूसरों से जुदा समझता है तथा अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए हर अनुचित कर्म करता है, चाहे उससे दूसरों को हानि तथा दु:ख हो, ऐसा

www.thearyasamaj.org

अज्ञानी पुरुष भूल जाता है कि अन्य व्यक्ति उसी की भांति परमात्मा की विभिन्न-विभिन्न मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अहम्-केन्द्रित होकर जुदा-जुदा जी रहा है, जिसके परिणामस्वरूप सर्वत्र क्लेश, दुःख, चिंता, काम, क्रोध आदि नकारात्मक मानसिक प्रवृत्तियों का साम्राज्य है। मनुष्य की अहंकार केन्द्रित चिंतन-प्रवृत्ति से उसके मन, बुद्धि चित्त, कर्म-इन्द्रियों, ज्ञान-इन्द्रियों तथा प्राणशक्ति पर कुप्रभाव पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य का शरीररूपी दिव्य मन्दिर रोगों का घर बन जाता है।

हमारे शरीर में पांच ज्ञान-इन्द्रियाँ हैं- आंख, नासिका, कान, जिह्वा तथा त्वचा। आंखों के द्वारा हमें रूप का, कानों के द्वारा शब्द का, नासिका के द्वारा गंध, त्वचा द्वारा स्पर्श का तथा जिह्वा द्वारा स्वाद का ज्ञान होता है। प्रत्येक ज्ञान-इन्द्रिय को एक विषय का ज्ञान होता है। यह ज्ञान तभी होगा जब इन्द्रिय स्वस्थ होगी तथा मन की एकाग्रता होगी, मन की एकाग्रता के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। मन समस्त ज्ञान इन्द्रियों का राजा है। ज्ञान होने के उपरांत मनुष्य सोच-विचार द्वारा कर्म करता है जिससे उसको कर्म का परिणाम मिलता है। जितना-जितना हम अपना कर्म ज्ञानपूर्वक मन की एकाग्रता से सूक्ष्म तथा तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा कल्याणकारी करेंगे, उसी मात्रा में हमें आनन्द की प्राप्ति होगी। चित्त में स्मृति का संचय होता है, स्मृति दो प्रकार की होती है - तथ्यात्मक तथा भावात्मक। मानो किसी ने हमारे साथ अच्छा व्यवहार किया, हमें याद रहेगा कि फलां व्यक्ति ने अच्छा व्यवहार किया - यह तथ्यात्मक स्मृति है, इसके साथ ही साथ हमारे चित्त पर यह प्रभाव भी पड़ेगा कि वह आदमी बहुत अच्छा है चाहे उसने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए हमारे साथ अच्छा व्यवहार किया हो - इस प्रभाव को भावात्मक स्मृति या संस्कार कहते हैं। अध्यात्म के सिद्धांन्तों के अनुसार हमारे चित्त पर भावात्मक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। न तो किसी के अच्छे व्यवहार का हम पर अच्छा प्रभाव पड़ना चाहिए, ना बुरे व्यवहार का बुरा प्रभाव पड़ना चाहिए। भावात्मक प्रभाव के कारण हमारे मन तथा बुद्धि कलुषित होते हैं, एवं तथ्यात्मक स्मृति क्षीण होती है। हमने तथ्यात्मक स्मृति को बढ़ाना है तथा भावात्मक स्मृति (संस्कारों) को संपूर्णतः समाप्त करना है, इसके लिए केवल शक्तिशाली संकल्प तथा परमात्मा से सच्ची प्रार्थना की आवश्यकता है।

हाथ, पांव, मुंह, गुदा तथा लिंग पांच कर्मेन्द्रियां हैं। हाथों द्वारा हम किसी चीज़ को पकड़ते या छोड़ते हैं, पांव द्वारा चलते हैं, मुंह द्वारा बोलते हैं (बोलना भी एक कर्म है, अध्यापकगण तथा सन्त महात्मा लोग अपना अधिकतर कर्म वाणी द्वारा करते हैं) अन्य इन्द्रियाँ शरीररूपी मन्दिर की शुद्धिकरण कर्मेन्द्रियाँ हैं। प्राणशक्ति शरीर के समस्त घटकों को जोड़ती है तथा जीवित रखती है।

www.thearyasamaj.org

दिव्य मन्दिर

हमने शरीर के समस्त अंगों को स्वस्थ एवं शक्तिशाली रखना है, जिसके लिए सतत अभ्यास तथा परिश्रम की आवश्यकता है। बाहरी जगत् में जो भी सुख मिलते हैं, वे आत्मा तथा परमात्मा के आनन्द के प्रतिबिंब हैं। बाहर की दुनियां में हमें कभी असीम सुख, आनंद, प्रेम, शक्ति आदि प्राप्त नहीं होते, हर सुख के पीछे दु:ख है, अच्छे स्वास्थ्य के पीछे रोग है, इस प्रकार बाह्य जगत् में सुख-दुख, लाभ-हानि, मान-अपमान, जीवन-मृत्यु आदि का द्वंद्व है। स्थाई शांति, शक्ति, आनंद प्रेम आदि आत्मा तथा परमात्मा के धर्म हैं। आजकल भौतिक प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण हमारे मन ने आत्मा पर अपना प्रभाव डालकर हमें परमात्मा से विमुख कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप हमारा जीवन द्वंद्वमय हो गया है तथा हमारा शरीररूपी दिव्य मन्दिर कलुषित हो गया है। हमें अपने कलुषित मन्दिर को दिव्य बनाने के लिए दृढ़ संकल्प करना होगा तथा परमात्मा से सहायता के लिए निरंतर प्रार्थना करनी होगी कि वे हमें काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि आत्मा के शत्रुओं से विमुक्त करें तथा अपने से सदा युक्त करें। हमें सदा परमात्मा को सच्ची लगन से तथा गहराई से स्मरण करना चाहिए, उसका ध्यान करना चाहिए, उसकी मौजूदगी महसूस करनी चाहिए तथा अपना सर्वस्व उसे समर्पण करना चाहिए। हमें सदा परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि हम उसका अभिन्न अंग बन कर अधिक से अधिक कर्म करें जिससे सभी का कल्याण तथा सर्वांगीण प्रगति हो। हमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि को संपूर्ण संकल्पशक्ति तथा ईश्वर-प्रार्थना द्वारा समाप्त करना है, ईश्वर के लिए प्रत्येक कर्म को पूजा की भांति करना है। इसके अतिरिक्त प्राणायाम करना चाहिए जिससे शरीर में प्रचुर मात्रा में प्राणशक्ति संचारित हो, बिमारी, बुढ़ापे पर धीरे-धीरे हमारा नियंत्रण हो तथा हम परमात्मा से सीधी दिव्य शक्ति लेकर अपने में ऐसी क्षमता पैदा करें जिससे हमारे भीतर अपनी इच्छा अनुसार आयु दीर्घ करने की कला आ जाए। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि यह विद्या जानते थे। ऐसा होना अब भी संभव है, केवल आवश्यकता है दृढ संकल्प, विश्वास, प्रार्थना, समर्पण तथा निरंतर प्रयत्न की। इसके अतिरिक्त हमें परमात्मा के दिव्य गुण जैसे अखण्ड शांति, असीम दिव्यशक्ति, अनंत प्रकाश, दिव्य प्रेम, आन्तरिक आनंद सौन्दर्य, माधुर्य, कर्मकुशलता आदि का निरंतर चिंतन करना चाहिए एवं इन दिव्य शक्तियों तथा गुणों को प्रयत्न से अपने आचरण में लाना चाहिए। ऐसा करने से हमारा जीवन अन्य व्यक्तियों के लिए प्रेरणास्रोत बनकर उनके शरीर को भी दिव्य मन्दिर बनाने में सहायक हो सकता है तथा इस प्रकार शरीररूपी मन्दिर की दिव्यता प्राप्त करने की मूक क्रांति लाई जा सकती है।

—३०७-बी, पॉकेट-२, मयूर विहार, फेज-१, दिल्ली-११००९१, फोन: ०११-२२७१४०४४

www.thearyasamaj.org

ऋतुसंहार में वर्षा का वर्णन

–डॉ० डायालाल मालदेभाई मोकरिया

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के अद्वितीय कवि हैं। उनकी वाणी जिस किसी भी विषय को स्पर्श करती है वही अखंड रसास्वाद कराने लगती है। इसीलिए अपनी सभी रचनाओं से वे आज भी विश्व भर में प्रशंसा प्राप्त कर रहे हैं। उनकी सातों कृतियों में से हम कोई भी कृति लें, उनमें रसभाव पूर्णतम है। ऋतु के सन्दर्भ में देखें तो उनके ऋतुसंहार काव्य में वर्षा की मनोरम कल्पना दिखाई पड़ती है।

भारत कृषिप्रधान देश है। कृषि का आधार वृष्टि होती है। इसलिए मेघ को राजा कहा गया है। महाकवि कालिदास ने भी ऋतुसंहार में इस रूपक को काव्यात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि– अब वर्षाऋतु आ चुकी है। यह राजा के समान सजधज कर आ गई है। बरसते मेघ हाथी हैं, बिजली पताका है और मेघगर्जना नगाडा है।[1] प्रणयीजनों के संदर्भ में सोचें तो यह ऋतु कामीजनप्रिय है। मेघदूत में भी कवि बादलों को हाथी का रूपक देते हैं।[2] हाथी में अधिक शक्ति होती है। मेघ की शक्ति भी अमाप है। वह जहाँ जाता है, वहाँ सब को अपनी शक्ति से प्रभावित करता है। ऋतुसंहार में कवि कालिदास ने पशु, पक्षी, मानव सहित संपूर्ण प्रकृति पर छाये हुए मेघ के साम्राज्य का वर्णन किया है।

प्रथम वर्षा होती है तब मिट्टी की महक बहुत अच्छी लगती है। इतना ही नही बारिश का पानी धीरे- धीरे चलता है। कवि ने जलप्रवाह की कल्पना भी सर्प की गति से की है।[3] वर्षारानी का नया जल पृथ्वी पर बहता है; तब वह कीटों, धूल और कचरे-कूडे से भरा हुआ होता है। जब यह सब लेकर चलता है तब एक टेढ़ा भुजंग जैसा लगता है। जब वर्षा होती हैं तब उसकी जलधारा शरीर पर लगती है। उसका रूपक देते हुए कवि लिखता है कि मानों प्रवासियों पर इन्द्रधनुष से ताने हुए बाण पड़ रहे हैं। वर्षा विरहीजनों को अतिशय पीड़ा पहुंचाती है जिसका मनोवैज्ञानिक निरूपण भी कवि प्रस्तुत करते हैं।

१. ऋतुसंहार, २/१ २. मेघदूत, १/२ ३. ऋतुसंहार, २/१३

www.thearyasamaj.org

डॉ० डायालाल मालदेभाई मोकरिया

वर्षाऋतु के समय आकाश और पृथ्वी दोनों की शोभा दर्शनीय होती है। आकाश काले बादल से भर जाता है, वहां कवि कल्पना करता है कि वह कहीं नीले कमल जैसा, कहीं खूब चिकने काजल जैसा और कहीं गर्भवती स्त्री के स्तनाग्र जैसा लगता है।[४] यह कवि की सौंदर्यदर्शी दृष्टि की देन है। पृथ्वी पर प्रथम वर्षा के बाद धीरे-धीरे दीखाई पड़ते तृणों के अंकुरो को कवि वैदूर्य की शलाकाओं के रूप में वर्णित करते हैं और इन्द्रगोप से तो पृथ्वी रंगीन रत्नों से सजी एक सुन्दर नायिका जैसी दिखाई पड़ती है।[५] अपने प्रियतम सागर को मिलने के लिए उत्सुक बनी हुई नदियों का भी कवि ने बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया है। नदियां बहुत तीव्र गति से बह रही हैं। किनारों पर वृक्ष भी बहने लगे हैं। यहां नदियों का उत्साह के साथ मानवीय संवेदनाओं का भी कवि ने मार्मिक आकलन किया है।

कवि वर्षाकाल में पशु-पक्षियों की भावोर्मियों को भी अच्छी तरह से प्रकट करते हैं। मेघ को देखकर मत्त मयूर नृत्य करते हैं, मेघध्वनि सुनकर मयूर अपने कलापों को फैलाते शोभायमान होते हुए संभ्रमपूर्वक आलिंगन में लगे हैं। इतना हि नहीं अपितु नृत्यरत मयूरों के कलापकों को नीलकमल समझकर भौरे उन पर टूटे पड रहे हैं।[६] मेघगर्जना सुनकर जंगली हाथी भी मदोन्मत्त हो गये हैं, हिरनों को सर्वत्र चारा सुलभ हो गया है पर वे मेघगर्जना से डरकर रेतवाली भूमि पर, इकट्ठे हो रहे हैं। इधर-उधर जाते हुए और झुके हुए मेघ को देखकर चातक पक्षी जल की याचना कर रहे हैं। इस तरह कवि ने पशुपक्षियों में मेघ का प्रभाव बताया है। उनमें दिखाई देने वाले ये भाव मानव-मन को भी गहराई से छूते हैं।

वर्षाऋतु में मनुष्यों में भी जो मनोभाव दिखाई देते हैं उनका कवि ने मार्मिक वर्णन किया है। मेघ प्रवासियों को दु:सह्य लगते हैं। प्रोपितभर्तृका नायिकाएं भी निराश हो जाती हैं। माला, आभूषण और अनुलेप छोड़कर केवल रोने ही लगती हैं। अभिसारिका नायिकाएं तो मेघ के कारण रात्रियों के प्रखर अंधकारमय होने पर भी अभिसरण करती हैं। क्योंकि मेघ की प्रिया बिजली उनका मार्गदर्शन करती जा रही है। स्त्रियां कामीजनों में आकर्षण पैदा कर रही हैं, नारियां मेघगर्जना सुनकर सन्तप्त हो जाती हैं। इसीलिए गुरुजनों के बीच से उठकर वे अंगों पर चंदन का लेप करने लगती हैं।[७] वह अपने शरीर पर विविध आभूषण धारण करती

४. ऋतुसंहारम, २/२

५. वही, २/५

६. वही, २/६

७. वही, २/२१

www.thearyasamaj.org

हैं। महाकवि मेघदूत में लिखते हैं कि मेघदर्शन से सुखी व्यक्ति का भी चित्त चलित हो जाता है, तो विरह से व्यथित व्यक्तियों के विषय में तो कहना ही क्या है ?[८] इस तरह कवि ने अपने वर्णन में मानवीय भावों का सूक्ष्मता से निरूपण किया है।

मेघ के आगमन से संपूर्ण संसार में नवचेतना आ जाती है। कवि ने स्वयं वर्षावर्णन के अन्त में उपसंहार में कहा है कि - बहुत-सी विशेषताओं से रमणीय कामियों का चित्तहारी, तरुशाखा और लताओं का निःस्वार्थ बन्धु यह वर्षाफल प्राणियों का प्राण बना हुआ हैं।[९] वर्षाऋतु की महिमा कालिदास ने इस तरह ऋतुसंहार काव्य में बताई हुई हैं। यद्यपि कवि ने ऋतुसंहार में प्रथमदृष्टि से वर्षाऋतु का स्वाभाविक वर्णन किया है, किन्तु यह वर्णन सार्वजनिक बन गया है। यहां तत्त्वज्ञान के अन्वेषकों को तत्त्वज्ञान दृष्टिगोचर होगा और रसिक जनों को काव्य दिखाई पड़ेगा। कवि ने मनुष्यों के साथ जीवजन्तु, पशुपक्षी, वृक्ष, लता सब का मानवीकरण करके मेघ के प्रभाव से मानव कैसा हो जाता है ; यह बात मार्मिकता से प्रस्तुत की है। प्रकृति के पुजारी और व्यंजना के आचार्य महाकवि कालिदास का वर्षावर्णन नितांत आस्वादनीय है।

–साहित्यसंकाय, श्रीसोमनाथसंस्कृत यूनिवर्सिटी, वेरावल (गुजरात)

८. मेघदूत, १/३

९. ऋतुसंहार, २/२८

www.thearyasamaj.org

ईंट का जवाब..............

– श्री सीताराम गुप्ता

कृष्ण कुमार बेहद गुस्से में थे। गुस्से की बात ही थी। वो राहुल जिसको उन्होंने गोद में खिलाया, अपने कंधों पर बिठाकर घुमाया आज उसका रवैया इतना उपेक्षापूर्ण! कृष्ण कुमार कभी सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि राहुल कभी ऐसा भी हो जाएगा। कृष्ण कुमार का भतीजा राहुल जिसको उन्होंने अपने बच्चों से भी ज्यादा प्यार किया आज उनसे सीधे मुँह बात नहीं करता। बात करता है तो उपेक्षापूर्ण लहजे में। व्यंग्य ज़्यादा करता है बात कम। तिलमिला कर रह जाते हैं कृष्ण कुमार। कृष्ण कुमार की पत्नी भी अच्छे स्वभाव की हैं। उन्होंने भी कभी कृष्ण कुमार के इस दुलार को अन्यथा नहीं लिया। हाँ, कभी-कभार इतना ज़रूर कह देती थीं कि अपने बच्चों की ज़िम्मेदारी भी समझा करो। अब कृष्ण कुमार का जी तो करता है दो-चार झापड़ रसीद कर दें सबके सामने ही। क़द में उनसे तीन-चार इंच लंबा हो गया है और एक बेटी का बाप भी बन चुका है राहुल तो भी क्या?

सचमुच सबके सामने उसको झापड़ मारने की इच्छा होती है कृष्ण कुमार की। फिर कृष्ण कुमार सोचते हैं कि क्या हम इसीलिए किसी को प्रेम करते हैं कि वो भी हमें प्रेम करे, हमारा सम्मान करे, हमारे पैर छूए, हमारी केयर करे, हमारी हर बात माने, हमारी किसी भी बात का विरोध न करे? ये तो व्यापार हुआ न? लेकिन अपने बच्चों से इतनी अपेक्षा तो हम कर ही सकते हैं? बहुत सारी बातें, बहुत सारे सवाल आते हैं कृष्ण कुमार के मन में। सभी सवालों का मन ही मन उत्तर देने का प्रयास भी करते हैं। कई बार ख़ुद को ही दोषी ठहराने लगते हैं। नहीं मैं दोषी नहीं हूँ कृष्ण कुमार दृढ़ता से मन में दोहराते हैं। मेरे साथ ऐसा कैसे हो सकता है? राहुल मेरे साथ ऐसा कैसे कर सकता है? शायद जीवन की वास्तविकता यही है, यह सोचकर कृष्ण कुमार के मन का द्वंद्व थम-सा जाता है। वो चुप हो जाते हैं और उनकी मुट्ठियों की कसावट ढीली पड़ जाती है।

दरअसल इस स्थिति के लिए सिर्फ़ राहुल का ही दोष नहीं है। उसके माता-पिता

भी कम दोषी नहीं हैं। वो ही कौन कृष्ण कुमार से ठीक से पेश आते हैं? क्या नहीं किया कृष्ण कुमार ने उनके बच्चों और उनके परिवार के लिए? वैसे तो कृष्ण कुमार उनके लिए कर भी क्या सकते थे? ख़ुद कृष्ण कुमार की गृहस्थी की गाड़ी डगमगा कर चल रही थी। ऐसे में कैसे कुछ करते कृष्ण कुमार उनके लिए? हाँ, कुछ नहीं किया तो कम से कम उनके बदहाली के दिनों में उनके लिए उनसे भी ज्यादा दुखी तो रहे। लेकिन अब इस दूसरों के दुख में दुखी होने की मात्रा को किस तराजु में तोलें? कैसे उसे वापस माँगें? क्या राहुल का बर्ताव उनकी इच्छा के अनुरूप हो जाने मात्र से बदहाली के दिनों में उनके दुख में दुखी होने का दुख कम हो जाएगा?

जो भी हो अब राहुल का अच्छा-ख़ासा कारोबार है। जब राहुल का कारोबार जमना शुरू हुआ था तो सबसे ज्यादा खुशी कृष्ण कुमार को ही हुई थी। पूरे परिवार का कायापलट हो गया था राहुल के कारोबार से। कृष्ण कुमार को जब भी पता चलता कि राहुल का काम पहले से ज्यादा अच्छा हो गया है तो वो अपनी खुशी जाहिर किए बिना न रहते। उसे फोन करते। काम-धंधे की चर्चा करते। उसे और आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करते। लेकिन राहुल को अब यह पसंद नहीं था कि कोई उसे बच्चा समझे और उसके काम में दख़ल दे और एक दिन राहुल ने कृष्ण कुमार को बुरी तरह से झिड़क दिया। कृष्ण कुमार तो जैसे एक टूटे हुए काँच के बर्तन की तरह झंझनाकर बिखर से गए। दुख इस बात का ज्यादा था कि राहुल के माता-पिता की मौजूदगी में ये सब हुआ और वो भी कुछ नहीं बोले और ये सिलसिला आज तक नहीं थम पाया है। कृष्ण कुमार राहुल पर अपना हक़ समझते हैं। वे राहुल को कभी पराया नहीं मानते। राहुल इस बात को क्यों नहीं समझता, इसी बात को लेकर कृष्ण कुमार सबसे ज़्यादा दुखी रहते हैं।

राहुल की शादी भी हो गई। वैसे तो राहुल का रिश्ता और किसी ने नहीं खुद कृष्ण कुमार ने ही करवाया था। लड़की ही नहीं घर भी बहुत अच्छा है। कृष्ण कुमार बीच में न पड़े होते तो इतने अच्छे घर का रिश्ता मिलना मुश्किल था। रिश्ता पक्का होते ही सब कृष्ण कुमार को भूल गए। रिश्ता पक्का होने के कई महीनों के बाद शादी हुई लेकिन किसी ने किसी मौके पर कृष्ण कुमार को याद नहीं किया। एक सप्ताह पहले शादी का कार्ड आया। शादी में कृष्ण कुमार और उनके परिवार की जो उपेक्षा हुई उससे कृष्ण कुमार आज तक तिलमिला रहे हैं। शादी के दो साल

www.thearyasamaj.org

बाद बेटी हुई। कई दिनों बाद उन्हें खबर मिली वो भी राहुल व उसके माता-पिता से नहीं किसी दूसरे से।

राहुल की बेटी के जन्म की खुशी में पार्टी हुई। पार्टी शानदार थी लेकिन कृष्ण कुमार के लिए नहीं। पूरा परिवार मेहमानों के स्वागत और देखभाल में लगा था लेकिन कृष्ण कुमार की तरफ किसी ने ध्यान नहीं दिया। सब उसके पास से ऐसे निकल जाते थे जैसे वो कृष्ण कुमार को जानते ही न हों। कोई बच्ची को भी उसके पास लेकर नहीं आया। कृष्ण कुमार खुद बच्ची के पास पहुँचे और उपहार आदि देकर बिना खाना खाए और बिना अपने परिवार के लोगों को कहे ही चुपचाप अपने घर लौट आए। कई साल तक इसी तरह चलता रहा। कृष्ण कुमार जब भी इस सिलसिले में अपने घर वालों से कोई बात करते तो उनके घर वाले उन्हें ही दोषी ठहराने का प्रयास करते। उनकी पत्नी पूछती कि क्या उनका अपना परिवार नहीं है जो दूसरों के लिए इतने परेशान रहते हैं? इस सवाल का कोई जवाब नहीं था कृष्ण कुमार के पास।

कुछ साल और बीत गए। बेटी के बाद राहुल के एक बेटा हुआ। कृष्ण कुमार ने फैसला कर लिया कि उनके यहां जाना तो दूर उनकी शक्ल भी नहीं देखेंगे। लेकिन काश! ऐसा हो पाता। बेटे के जन्म पर भी शानदार पार्टी दी गई। कृष्ण कुमार को भी जाना ही पड़ा पर उन्होंने फैसला कर लिया था कि वो किसी भी सूरत में ज़्यादा देर नहीं रुकेंगे जिससे कोई अप्रिय बात न हो। घर वालों का रवैया देखते हुए वो खुद किसी भी बात को तूल देने के पक्ष में नहीं थे। कृष्ण कुमार परिवार सहित पार्टी में पहुँचे। पार्टी पहले से भी अधिक शानदार और जानदार थी। उसी के अनुरूप राहुल और उसके माता-पिता की अकड़ और अहंकार भी पार्टी में तैर रहे थे। राहुल तो देखने के बाद भी उधर नहीं आया जिधर कृष्ण कुमार खड़े थे। कृष्ण कुमार ने भी उनकी तरफ देखने का प्रयास तक नहीं किया।

कृष्ण कुमार के अपने बेटे ने लाकर उन्हें प्लेट पकड़ा दी तो कृष्ण कुमार ने ज़्यादा नाटक-वाटक न करते हुए चुपचाप खाना भी खा लिया। उपहारादि उनकी पत्नी बच्चे को दे आई थीं। भोजनादि के उपरांत बाहर निकल ही रहे थे कि राहुल की बहन सौम्या नवजात शिशु को लिए हुए उनके पास आ पहुँची। उसने नवजात शिशु को संबोधित करते हुए कहा कि लो भई अपने दादाजी से तो मिल लो। फिर नवजात शिशु को कृष्ण कुमार की बाँहों में देते हुए कहा, 'अभी से कहाँ भागे जा रहे हो? लो अपने पोते को खिलाओ।' कृष्ण कुमार

www.thearyasamaj.org

श्री सीताराम गुप्ता

पोते को गोद में लेकर वहीं एक कुर्सी पर बैठ गए। पोता दादा की उँगली पकड़ कर मुँह में डालने की कोशिश करने लगा। बिलकुल राहुल की तरह ही।

कृष्ण कुमार अतीत में खो गए। लगा राहुल को ही खिला रहे हैं। तभी सौम्या ने कहा, 'पहले पापा को गोद में खिलाया, कंधे पर बिठाकर घुमाया-फिराया, पढ़ाया-लिखाया और अब पोता आ गया। अब इसके लिए तैयार हो जाओ। आपको छुट्टी नहीं मिलने की।' दादाजी ने ध्यानपूर्वक पोते की आँखों में झांक कर देखा। उनके अंदर कुछ पिघल-सा रहा था। कुछ देर पहले जिन लोगों की शक्ल नहीं देखना चाहते थे उन्हीं का नवजात शिशु कृष्ण कुमार की गोद में खेल रहा था। 'यह उनका अपना पोता ही तो है, अपने राहुल का बेटा,' कृष्ण कुमार मन ही मन आनंदित हो रहे थे। उनके मन में अपने पोते के लिए आशीर्वादों की झड़ी लग चुकी थी। उन्होंने पोते को दुलारते हुए मन ही मन बस इतना ही कहा, 'मेरी उम्र भी तुम्हें ही लग जाए।' तभी राहुल का वहां से गुज़रना हुआ। कृष्ण कुमार ने राहुल को सुनाते हुए बुलंद आवाज़ में पोते से कहा, 'देश का अच्छा नागरिक बनना और हाँ अपने बाप की तरह अकड़ू कभी मत बनना।'

-ए०डी०-१०६-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४, फोन नं: ०९५५५६२२३२३

www.thearyasamaj.org

सुख-समृद्धि का आगार हमारा परिवार

–श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

प्रत्येक व्यक्ति के लिए पहला विद्यालय उसका अपना ही परिवार होता है। विद्यालयीय शिक्षा से पूर्व बचपन में बालक को अच्छे संस्कार उसके माता-पिता के द्वारा ही मिलते हैं। प्रारंभ से ही माता-पिता द्वारा बालकों को त्याग, सेवा, स्नेह के संस्कार घर में सिखाये जावें तो बचपन से ही उनमें सेवा व समन्वय की भावना उत्पन्न होगी। आजकल आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवावर्ग अपने माता-पिता, बुजुर्गों का यथोचित सम्मान करना तो दूर उनके साथ बैठकर बातचीत तक नहीं करते हैं। किंतु मदर्स्-डे और फादर्स्-डे पर माता-पिता को कीमती उपहार देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री करते हैं। बुजुर्ग माता-पिता को कीमती उपहार की अपेक्षा आदर-सम्मान, सेवा व देखभाल की विशेष जरूरत होती है। वास्तव में जरूरत है उन्हें अपने पोते-पोतियों, बेटे व बहूओं के साथ प्रेमपूर्वक रहने, बच्चों के साथ खेलकूद मनोरंजन करने व उनकी शिक्षा में सहयोगी बनने की।

दादा-दादी के अनुभवों का लाभ बच्चों को मिलने से बच्चों को अच्छे संस्कार तो मिलेंगे ही साथ ही साथ वो भी व्यस्त रहेंगे। व्यस्त रहने से बुजुर्गों का स्वास्थ्य भी अधिक ठीक रहेगा। जब व्यक्ति के पास कोई कार्य नहीं होता है तो वो अपने बारे में अधिक सोच-सोचकर परेशान हो जाता है तथा अस्वस्थ हो जाता है। केवल दिखावे के लिए बुजुर्गों का आदर सम्मान पर्याप्त नहीं है। अपितु उन्हें पूर्णरूप से अपनेपन की जरूरत है। दादा-दादी अपने पोते-पोतियों के साथ घुल-मिलकर रहें तो दोनों एक दूसरे के सहयोग एवं सहचर्य से परस्पर लाभान्वित हो सकेंगे।

परिवार के सदस्यों में आपस में मतभेद भले ही हो किंतु मन-भेद नहीं होना चाहिए। मतभेद होने पर आपस में विचार-विमर्श द्वारा उसे दूर करना चाहिए तथा परिवार के मुखिया के निर्णय को सर्वोपरि समझकर मानना चाहिए। तथ्य तो यह है कि अपनी कमियों को दूर करने हेतु कोई तैयार नहीं होता है। दूसरों की आदतों में बदलाव कैसे हो यह सभी चाहते हैं? जैसे बड़ा भाई छोटे भाई से अपेक्षा रखता

www.thearyasamaj.org

श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

है कि वह भरत बन जाए लेकिन स्वयं राम बनने को तैयार नहीं। छोटा भाई बड़े भाई से हमेशा राम बनने की अपेक्षा रखता है पर स्वयं भरत बनने को तैयार नहीं। सास बहू से आशा करती है कि वह उसको माँ समझे लेकिन स्वयं बहू को बेटी मानने को तैयार नहीं। बहू चाहती है कि सास मुझको बेटी की तरह माने लेकिन स्वयं सास को माँ जैसा नहीं मानती। पति चाहता है मेरी पत्नी सीता जैसी बने पर स्वयं राम की तरह आदर्श पति बनने को तैयार नहीं। ऐसी मन: स्थिति के कारण हम परिवार में जब सदा दूसरों में ही कमियां देखते रहते हैं तब मन में प्रेम व प्रसन्नता की सुवास कहाँ से आयेगी। अत: पहले अपने जीवन, स्वभाव, विचार व व्यवहार में सुंदर बदलाव लावें तो पूरा परिवार सुंदर व सुखदायी दिखने लग जायेगा।

आप स्वयं संस्कारी हैं यह सच है किंतु आज के प्रदूषित परिवेश में आने वाली पीढ़ी को संस्कारी बनाना बहुत जरूरी है इसके लिए आपको विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है। आज युवावर्ग इंटरनेट, मोबाइल और टी.वी. के चैनलों के माध्यम से अश्लील सीरियल, गंदे मजाक व गानों को प्रतिदिन देखता व सुनता रहता है। इसलिए आप सदैव ध्यान रखें कि आपके बच्चे क्या, देख, सुन व पढ़ रहे हैं। बुरी संगत का असर बच्चों पर जल्दी पड़ता है। कुसंगत के कारण बच्चे चोरी, हिंसा, व्यभिचार, मद्यपान आदि बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। इसलिए बच्चों के मित्रों तथा उनके परिवार की भी जानकारी सदैव करते रहना चाहिए।

आज बच्चों को स्वास्थ्य की तनिक भी परवाह नहीं है खाने में फास्ट फूड, पिज्जा, नूडल्स, मैगी, चाउमीन के अलावा कुछ नहीं चाहिए। स्कूल से घर आते ही बच्चे जैसे-तैसे होमवर्क कर टी.वी देखने बैठ जाते हैं। निकट से और अधिक समय तक टी.वी. देखने के कारण बचपन में ही उनकी आँखों पर चश्मा लग जाता है। इसलिए बच्चों के खान-पान व उनके समय का सदुपयोग कैसे हो ? अभिभावकों को इस पर विशेष सतर्कता के साथ ध्यान देना चाहिए। आजकल छोटे-छोटे बच्चों को मातायें तथा स्कूलों में अध्यापिकायें फिल्मी गानों पर नृत्य करना तथा पाश्चात्य सभ्यता सिखाती हैं। फलस्वरूप बचपन से ही बच्चों के जीवन में फिल्मी फैशन का रंग जमने लगता है। किशोरावस्था तक आते-आते तो वह फिल्मी कलाकारों का अनुकरण अपने जीवन में करने लगते हैं एवं रहन-सहन वैसा ही बना लेते हैं।

वर्तमान में युवाओं का एकमात्र लक्ष्य येनकेन प्रकारेण अधिक से अधिक धन कमाना एवं अधिक से अधिक ऐशो-आराम

www.thearyasamaj.org

करना हो गया है। शिक्षा के पश्चात् माता-पिता, घर-परिवार को त्यागकर युवावर्ग अधिकाधिक धनप्राप्ति के लिए विदेश की ओर जा रहे हैं। धन कमाना जरूरी है। किन्तु अत्यधिक धन की लालसा में अपने कर्त्तव्य को भूलकर पागल होना उपयुक्त नहीं है। जीवन की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त धन होते हुए भी दूसरों की देखा-देखी वैभव प्रदर्शन के लिए गलत तरीकों से धनोपार्जन करके अपने परिवार व स्वयं के सुख, चैन, शांति को नष्ट करना कहाँ की बुद्धिमानी है ?

जरा सोचिये कि परिवार की सुख-समृद्धि शांति से अधिक महत्त्व धन को क्यों दिया जा रहा है ? जबकि मनुष्य का जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक परिवार से ही सम्बन्ध रहता है। हम सभी जानते हैं कि व्यक्ति के जन्म से लेकर अंतिम संस्कार तक के कार्यों में परिवार के सदस्यों का ही सहयोग मिलता है। तो फिर परिवार की सुख-समृद्धि को अधिक महत्त्व देना चाहिए न कि धन-सम्पत्ति को। व्यक्ति के इस संसार से विदा होने के बाद उसके सद्कार्यों की ही प्रशंसा होती है न कि उसके द्वारा अर्जित की गई धन-सम्पत्ति की। परिवार के प्रति सहनशीलता, त्याग, स्नेह, बुजुर्गों के प्रति आदर-सम्मान तथा समाज व राष्ट्र के प्रति किये गये सेवा-कार्यों को व्यक्ति के चले जाने के बाद भी स्मरण किया जाता है। अतः हमारा सबसे प्रथम लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम अपने परिवार को सुसंस्कृत करें एवं बच्चों को उत्तम संस्कार प्रदान करें। परिवार के प्रत्येक सदस्य के व्यवहार में मधुरता, विनम्रता, उदारता, सहनशीलता, आहार में सात्विकता, जीवन में सहृदयता और पवित्रता होगी तो वहाँ सुख, समृद्धि, संतोष, शांति स्वतः ही आ जायेगी और उस परिवार की भावी पीढ़ी सद्गुणों से परिपूर्ण हो जायेगी।

उत्तम संस्कारों के लिए परम आदरणीय श्री घनश्याम दास जी बिरला ने अपने पुत्र श्री बंसत कुमार जी बिरला को वि. सम्वत् १९९१ (सन् १९३४) में एक पत्र लिखा था उसका उल्लेख पाठकों के लाभार्थ यहां किया जा रहा है।

चि. बसन्त,

यह जो लिखता हूँ उसे बड़े व बूढ़े होकर पढ़ना। अपने अनुभव की बात करता हूँ। संसार में मनुष्यजन्म दुर्लभ है- यह सच बात है और मनुष्य जन्म पाकर जिसने शरीर का दुरुपयोग किया वह पशु है। तुम्हारे पास धन है, अच्छे साधन हैं। उनका सेवा के लिए उपयोग किया तब तो साधन सफल हैं, अन्यथा वे शैतान के औजार हैं। तुम इतनी बातों का ध्यान रखना -

www.thearyasamaj.org

श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

१. धन का मौज-शौक में कभी उपयोग न करना। रावण ने मौज-शौक की थी, जनक ने सेवा की थी। धन सदा रहेगा भी नहीं, इसलिये जितने दिन पास में है उसका उपयोग सेवा के लिये करो। अपने ऊपर कम से कम खर्च करो, बाकि दु:खियों का दु:ख दूर करने में व्यय करो।

२. धन शक्ति है। इस शक्ति के नशे में किसी के साथ अन्याय हो जाना संभव है। इसका ध्यान रखो।

३. अपनी संतान के लिये यही उपदेश छोड़कर जाओ- यदि बच्चे ऐश-आराम वाले होंगे तो पाप करेंगे और व्यापार को चौपट करेंगे। ऐसे नालायकों को धन कभी न देना। उनके हाथ में धन जाय उससे पहले ही गरीबों में बाँट देना, क्योंकि तुम यह समझना-कि तुम उस धन के न्यासी हो और हम भाईयों ने व्यापार को बढ़ाया है तो यह समझकर कि तुम लोग धन का सदुपयोग करोगे।

४. सदा यह ख्याल रखना कि तुम्हारा धन जनता की धरोहर है। तुम उसे अपने स्वार्थ के लिए उपयोग नहीं कर सकते।

५. भगवान् को कभी न भूलना, वह अच्छी बुद्धि देता है।

६. इन्द्रियों पर काबू रखना वरना वह तुम्हें डूबो देगीं।

७. नित्य नियम से व्यायाम करना।

८. भोजन को दवा समझकर खाना। जो स्वाद के वश होकर खाते हैं वे जल्दी मर जाते हैं और काम नहीं कर पाते।

यह पत्र केवल संदर्भमात्र के लिए दे रहा हूँ। अगर आज भी सभी के पिता या माता अपने बच्चों को इस प्रकार का शिक्षाप्रद पत्र लिखा करें या उन्हें तनिक देर घर में अपने पास बिठाकर समझाया करें, तो मैं समझता हूं, भारतीय संस्कृति की परम्परा से रंजित पिता के विचारों से वे अवश्य रंजित होते हुए एक अच्छे नागरिक सिद्ध होंगे। पर देखा गया है कि आज माता-पिता के पास इतना समय ही नहीं कि वे उन्हें अपने पास बिठा सकें और न बच्चों के पास बैठने का इतना समय ही होता है। पर अब समय की पुकार है कि माता-पिता को ऐसा समय निकालना पड़ेगा और बच्चों को भी उनकी बातें माननी पड़ेंगी। अन्यथा एक दिन वह आयेगा जब भारतीय बच्चे भी पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंग जायेंगे और माता-पिता उनसे यह पूछने के हकदार भी नहीं होंगे कि तुम कहां जा रहे हो या रात्रि में विलम्ब से आने पर यह भी नहीं पूछ सकते कि तुम इतनी देर कहाँ थे।

-प्रधान संपादक 'अध्यात्म अमृत' ज्ञानमंदिर, सिटी रोड़,
मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) ३०५८०१, मोबा० ९२५२९८८२२१

www.thearyasamaj.org

छू लो शिखर

-श्रीमती प्रोमिला भारद्वाज

पंख फैला,
भरो उड़ान,
ऐ देश के लाल!
सम्भल-सम्भल, सम्भाल,
स्वर्णिम वर्तमान
भूतकाल हैं पाताल
भविष्य गगन विशाल,
वर्तमान है कमाल
इसे सम्भाल
हो जा माला-माल,
ज्ञान व अनुभवों से
प्राप्त ऊर्जा से
कर कार्य उत्कृष्ट
आएगा स्वयं निकट
वाँछित लक्ष्य,
दूर होंगी स्वयं
बाधाएं विकट,
श्रम के प्रहार से,
दृढ़ निश्चय
हर लेगा
भय व हर संकट,

आत्म-विश्वास की ढाल
उबारेगी स्वयं
आशंकाओं के भ्रमजाल से
रुक न थक,
निःसंकोच बढता चल,
प्रतीक्षा कर रहा
सफलता का
गगन विशाल
व्याकुल चूमने को
तुम्हारा भाल,
उठो, छू लो
उच्चतम शिखर
समझो संकेत,
प्रगति का है सवाल
आते-जाते पलों के
सीने पे हो सवार,
पँख फैलाओ
सम्भल-सम्भल
भरो उड़ान,
करो कमाल
ऐ देश के लाल!

-प्रबन्धक, जिला उद्योग केन्द्र, जिला मण्डी (हि०प्र०) १७५००१

www.thearyasamaj.org

उपनिषदों में वर्णित विद्या एवं अविद्या का स्वरूप

–डॉ० सरस्वती

ज्ञान के आदिस्रोत के रूप में स्वीकृत वैदिक संहिताओं से प्रादुर्भूत ज्ञान के चरमोत्कर्ष को वेदान्त नाम से जाना जाता है। वेदान्त के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए परम्परा कहती है – **"वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणम्"** अर्थात् उपनिषद् नाम से प्रख्यात साहित्य को ही वेदान्त कहा जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जीवन से संबद्ध समग्र ज्ञान-विज्ञान का उत्कर्ष, उत्कृष्ट स्वरूप अथवा बीजरूप में अंकुरित उत्स हमें उपनिषद्-साहित्य में उपलब्ध होता है। भारतीय मनीषा के चिन्तन की विलक्षणता यह है कि वह जीवन को जन्म और मृत्यु के दो विपरीत ध्रुवों के मध्य न समेटकर इसे एक सतत प्रवाहमान प्रक्रिया के रूप में समझती है एवं व्याख्यायित भी करती है। जीवन के प्रति इस विलक्षण दृष्टिकोण से निर्देशित भारतीय चिन्तनधारा जीवन के विविध पक्षों और विचारणीय बिन्दुओं पर अपना मन्तव्य और दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। उपनिषत्साहित्य के बहु-आयामी तत्त्वविश्लेषण की सुदीर्घ परम्परा में से एक अन्यतम महत्त्वपूर्ण बिन्दु, विद्या और अविद्या के स्वरूप को इस लेख के माध्यम से समझने और समझाने का स्वल्प प्रयास यहां किया जा रहा है। संसार में विद्या का अर्थ साक्षरता अथवा विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाकर विभिन्न विषयों से संबन्धित पुस्तकों को कण्ठस्थ करके विभिन्न उपाधियों को प्राप्त करना समझा जाता है एवं विद्या के प्रचार एवं विस्तार के लिए सरकार द्वारा अनेक नीतियों का निर्माण एवं लक्ष्य प्राप्ति के लिए कार्यान्वयन किया जाता है। अविद्या की परिभाषा निरक्षरता से की जाती है। परन्तु उपनिषद् के ऋषियों की दृष्टि में विद्या एवं अविद्या का अर्थ इस संसारिक परिभाषा से नितान्त भिन्न है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए ईशोपनिषद् का ऋषि कहता है।

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।।[1]

विद्या कुछ और अर्थात् सांसारिक अर्थ से

१. ईशावास्योपनिषद्/१०

www.thearyasamaj.org

भिन्न कही गयी है तथा अविद्या भी प्रचलित अर्थ से भिन्न कुछ अन्य ही कही गयी है। इस विषय में धीर मनुष्यों के इस कथन को हम सुनते आए हैं। इसी बात को कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता के संवाद के अवसर पर यमराज विद्या एवं अविद्या का भेद स्पष्ट करते हुए नचिकेता को कहते हैं –

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सिनंनचिकेतसंमन्येनत्वाकामा बहवोऽलोलुपन्त ।।[2]

हे नचिकेता! विद्या तथा अविद्या ये दोनों एक-दूसरे से सर्वथा दूर, विपरीत, भिन्न तथा नाना गति वाली हैं नचिकेता ! मैं तुम्हें विद्या को चाहने वाला मानता हूँ क्योंकि सांसारिक प्रलोभन तुम्हें अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सके। क्या यमराज और नचिकेता के इस संवाद से यह समझा जाए कि अविद्या से अपने आपको पृथक् कर केवल मात्र विद्या बोध और प्राप्ति के ही उपाय किए जाएँ। इस भ्रान्ति अथवा शंका को ईशोपनिषद् का ऋषि निर्मूल करते हुए कहता है कि विद्या और अविद्या दोनों को जानना आवश्यक है। दोनों का ज्ञान मनुष्य के कल्याण एवं आनन्द प्राप्ति रूप चरम लक्ष्य को प्राप्त करने में न केवल सहायक है अपितु अत्यन्त आवश्यक है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।[3]

अर्थात् विद्या और अविद्या दोनों का साथ-साथ ज्ञान होना चाहिए। अविद्या से मृत्यु को तरकर विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है। विद्या और अविद्या दोनों ही आवश्यक हैं। यह जान लेने पर उनके स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है। जीवात्मा के द्वारा मनुष्य का शरीर प्राप्त कर लेने पर, शरीर के संरक्षण के लिए सांसारिक सुख-सुविधाओं का भोग नितान्त आवश्यक है। क्योंकि बिना भोजन, बिना वस्त्र एवं अन्य मकान यानादि सुख-सुविधाओं के बिना जीवनयापन अकल्पनीय है। परन्तु जब मनुष्य इन सब सुखों को मात्र साधन समझकर भोगता है तथा इनके प्रति आसक्त न होकर एकमात्र साध्य को प्राप्त करने की ओर ही उसका सारा ध्यान रहता है तब वह विद्या को जान रहा होता है इसके विपरीत जब साध्य को भुलाकर साधनों को ही साध्य मानकर उनमें लिप्त हो जाता है तब वह अविद्या के मार्ग का पथिक हो जाता है। अविद्या को जानना आवश्यक है क्योंकि अविद्या के द्वारा ही विद्या तक पहुँचा जाएगा। जैसे कि मकान पर चढ़ने के लिए सीढ़ियों का प्रयोग आवश्यक है उसी प्रकार विद्या प्राप्त करने के लिए अविद्या का ज्ञान आवश्यक है। लेकिन

२. कठोपनिषद् अ. १/२/४

३. ईशोपनिषद् / ११

www.thearyasamaj.org

यदि सीढ़ियों को ही लक्ष्य मानकर व्यक्ति मकान पर चढ़ने रूपी लक्ष्य को भूल जाता है तो वह अविद्या में ही भटकता रहता है एवं अपने-आपको बहुत चतुर एवं पण्डित समझता हुआ वह मूढ आँखे होते हुए भी अन्धा ही रहता है एवं दूसरे नेत्रहीनों का नायक बन जाता है। इसी बात को कठोपनिषद् के ऋषि ने यमराज के मुख से नचिकेता को इस प्रकार कहलवाया है-

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः
पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढाः अन्धेनैव
नीयमानाः यथान्धाः।।[४]

छान्दोग्योपनिषद् में दिए गए नारद सनत्कुमार के संवाद से भी विद्या और अविद्या का भेद स्पष्ट हो जाता है। एक बार नारद मुनि सनत्कुमार के पास गए एवं बोले- भगवन् मुझे विद्यादान दीजिए। सनत्कुमार ने पूछा- तुमने अब तक क्या सीखा है ? नारद मुनि ने उत्तर दिया। दुनियाँ में जिस भी विद्या से सम्बन्धित पुस्तकें विद्यमान हैं उन सभी का अध्ययन मैंने किया है पुनरपि मैं कुछ नहीं जानता । मैं सब वेदों का ज्ञाता एवं सब शास्त्रों का पण्डित होकर मन्त्रवित् तो हो गया हूँ, परन्तु आत्मवित् नहीं हुआ। इतना सब पढ़ लेने पर भी कष्ट आने पर सामान्य अनपढ़ लोगों के समान ही शोक को प्राप्त हो जाता हूँ। मुझे आत्म-शान्ति नहीं मिली। उसे प्राप्त करना चाहता हूँ। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य सम्पूर्ण सुख-सुविधा सम्पन्न सफल जीवन व्यतीत कर एवं उसकी निस्सारता अनुभव कर जब सब कुछ छोड़कर जंगल में जाने की योजना बना रहे हैं तब अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहते हैं- मैत्रेयी! मैं यह सब तुम्हें देता हूँ, तुम अपना जीवन आनन्द से बिताना। मैत्रेयी ने पूछा- इतनी धन-संपत्ति छोड़कर आप क्यों जा रहे हैं ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- इस धनसंपत्ति से खाना-पीना चल सकता है, अमरत्व प्राप्त नहीं हो सकता। मैं इन सांसारिक भोगों का परिणाम देख चुका हूँ। मुझे इन भोगों से कुछ विशेष नहीं मिला अतः मैं जा रहा हूँ। यह सुनकर मैत्रेयी भी दुविधा में पड़ गयी कि एक तरफ भोग और दूसरी तरफ अमरत्व है तो क्यों न मैं भी अमरत्व को ही प्राप्त करने का प्रयास करूँ। याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को कहते हैं कि हे मैत्रेयी! यदि मनुष्य के पास इतना धन इकट्ठा हो जाए जितना कि सारी पृथ्वी पर है तब भी उसका जीवन उतना ही सुखी हो सकता है जितना कि एक साधनसम्पन्न व्यक्ति का होता है। ऐसे सम्पन्न व्यक्ति को खाने-पीने की कोई कमी न

४. कठोपनिषद् अ. १/२/५

www.thearyasamaj.org

होगी तथा अन्य सुख-सुविधाओं के लिए भी सभी उपकरण विद्यमान होंगे परन्तु ये सब उपकरण ही हैं किसी अन्य लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, जिसके लिए उसे मनुष्ययोनि मिली है। परन्तु जब मनुष्य अपने इस मानव-शरीर को मात्र उपकरण जुटाने में ही लगा देता है तब वह इन उपकरणों को ही लक्ष्य मानता हुआ, इनका दास बन जाता है इनके अधीन हो जाता है। इसी बात को याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा- "**यथैव उपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यात्**"[५] अर्थात् जैसा साधन-सम्पन्न व्यक्तियों का जीवन होता है वैसा ही तुम्हारा भी होगा इससे अधिक कुछ भी नहीं। इन साधनों का कोई अन्त नहीं है। एक वस्तु मिलती है, कुछ समय सुख देती है फिर मन ऊब जाता है तथा मनुष्य फिर नए लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत हो जाता है। यह अन्तहीन क्रम समाप्त नहीं होता अपितु जीवन समाप्त हो जाता है। गरीब साधनों की होड़ में लगा रहता है तथा अमीर साधनों की होड़ में लगा रहता है। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे मैत्रेयी! मैं इसलिए अब अमृत की खोज में निकल पड़ा हूँ। जिस अमृत की प्राप्ति मुझे इन साधनों से नहीं हुई। यद्यपि याज्ञवल्क्य ने अपने संवाद में विद्या एवं अविद्या शब्दों का प्रयोग नहीं किया। इनके स्थान पर उन्होंने उपकरण एवं अमृत शब्द का प्रयोग किया है, परन्तु अभिप्राय वही है जो ईशोपनिषद् या कठोपनिषद् में नचिकेता ने विद्या तथा अविद्या शब्दों से प्रकट किया है। उपनिषदों की भाषा हम सांसारिकों की भाषा से भिन्न है। हम सांसारिक सुख-सुविधा के साधनों को जुटाने की कला को विद्या कहते हैं, तथा उन साधनों के उपयोग से हम आनन्द प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जिसको हम विद्या समझते हैं वह उपनिषदों की दृष्टि में अविद्या है। उपनिषद् का ऋषि कहता है जिस अविद्या में मनुष्य रस या आनन्द का अनुभव करता है, वह अविद्या, विद्या को प्राप्त करने का साधन है। अविद्या द्वारा प्राप्त सुख 'श्वोभव' अर्थात् कल तक रहने वाला एवं दुःख मिश्रित तथा अनित्य है। परन्तु विद्या द्वारा प्राप्त सुख एवं आनन्द शाश्वत, नित्य एवं दुखरहित परमानन्द मात्र है। उपनिषद् का ऋषि अविद्या को हेय नहीं समझता, वह अविद्या की प्रशंसा करते हुए कहता है- '**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा**' अर्थात् अविद्या से मृत्यु को तरा जा सकता है '**विद्ययाऽमृतमश्नुते**' अर्थात् विद्या से अमृत प्राप्त होता है। अविद्या अनुपयोगी नहीं है। नित्य नए सुख-सुविधा के आविष्कार अविद्या

५. बृहदारण्यकोपनिषद् - २/४

www.thearyasamaj.org

है। अविद्या से मृत्यु को तर सकते हैं। अविद्या ने हमें क्या नहीं दिया। आत्मा के रथ इस शरीर को शरीर-विज्ञान के वेत्ताओं ने **व्याधिमन्दिर** शब्द से संबोधित करते हुए कहा है **शरीरं व्याधिमन्दिरम्** । अविद्या के आविष्कारों ने इन व्याधियों को दूर करने के लिए अनेक उपयोगी औषधियों का आविष्कार कर वास्तव में मृत्यु को जीत लिया है। मृत्यु को जीतकर जीवन प्रदान किया है। लेकिन केवलमात्र जीने के लिए तो मनुष्य शरीर नहीं है, जीते तो अन्य योनियों के जीव भी हैं पुन: मनुष्य शरीर पाने की श्रेष्ठता का क्या लाभ ? जीवन जीते हुए मनुष्य की श्रेष्ठ योनि द्वारा अविद्या से विद्या की ओर सतत प्रयास के लिए प्रेरित करना ही उपनिषद् के ऋषि का आशय प्रतीत होता है। मनुष्य की भूल यह है कि वह नित्य की खोज में निकलकर अनित्य से इतना प्रभावित हो जाता है कि उसे यथार्थ का बोध नहीं रहता एवं वह अनित्य को ही नित्य समझने लगता है। यह संसार मिथ्या है या कुछ भी नहीं है। ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि संसार यथार्थ है। ईश्वर द्वारा निर्मित अपूर्व वैभवपूर्ण एवं सुन्दर है तथा हमारे भोग के लिए ही बना है। इसी बात को पुष्ट करते हुए योगदर्शनकार कहता है - **भोगापवर्गार्थम् दृश्यम्** अर्थात् यह संसार भोग और अपवर्ग के लिए है। हमारा शरीर भी तो पञ्चभूत का समन्वयरूप प्रकृति का ही अंग है तथा इस शरीर के माध्यम से ही व्यक्ति अपवर्ग को प्राप्त करता है। इस प्रकृति अर्थात् संसार के अभिन्न अंश शरीर के बिना अपवर्ग की कल्पना भी सम्भव नहीं है। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि हम जो जैसा है उसको वैसा समझकर अपना जीवन लक्ष्य की ओर अग्रसर करें। जब तक जो जैसा है उसको वैसा नहीं समझते तो कठिनाई आती है और पश्चात्ताप करना पड़ता है। यह यथार्थ हमें जीवन एवं मृत्यु रूपी दो सीमाओं के मध्य रहते हुए अच्छी तरह समझ आ जाता है। ये सुन्दर वैभवपूर्ण संसार के सुख यहीं छोड़कर जाने पड़ते हैं, तब हमें समझ आता है कि इसमें मेरा क्या था ? लेकिन तब देर हो चुकी होती है।

यदि हम संसार को साधन मात्र मानकर जीते हैं तो छोड़ने का कष्ट नहीं होता और हम समझ जाते हैं कि यह यथार्थ दिखने वाला सब कुछ यथार्थ होते हुए भी अयथार्थ है। संसार का यह यथार्थ ज्ञान ही अविद्या है, जिसे भोगने का उपनिषद् के ऋषि ने बहुत उत्तम प्रकार बताते हुए लिखा है **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'**[६] अर्थात् इस सांसारिक वैभव को त्यागभाव से

६.. ईशोपनिषद्/१

www.thearyasamaj.org

भोगो। संसार में रहो पर निरासक्त भाव से रहो। हाथ में कंगन पहनो पर वह इतना कसा हुआ न हो कि शोभा के स्थान पर हथकड़ी बन जाए। वीणा से यदि मधुर स्वर की अपेक्षा है तो उसके तार न तो ढीले होने चाहिएं और न ही बहुत कसे हुए। ठीक इसी प्रकार इस संसार के भोगों को भोगना चाहिए ताकि इसमें आसक्ति भी न हो और आवश्यकतानुसार इसे भोगते हुए इसमें भी उस परम शक्ति का दर्शन कृतज्ञता भाव को उत्पन्न करने वाला एवं परम लक्ष्य के प्रति प्रेरणा प्रदान करने वाला हो न कि बन्धन का कारण बनने वाला। संसार के सभी ज्ञान सापेक्ष हैं। इस बात को हम एक निदर्शन के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे कि हम कक्षा में किसी विद्यार्थी को कहते हैं कि 'यह बहुत अच्छा है' इसका मतलब यह है कि कक्षा में वहाँ पर कोई बुरा भी है जिसकी अपेक्षा से वह अच्छा है। ठीक इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि सांसारिक सुख अनित्य है अर्थात् चिरस्थायी नहीं है, क्षणिक है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कोई सुख नित्य है, जो हमेशा रहता है, जिसकी अपेक्षा से हम अनित्य को जानते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह अनित्य संसार नित्य की ओर संकेत कर रहा है। अतः दोनों को जानना आवश्यक है। तभी तो उपनिषद् का ऋषि कहता है – **विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह**। हमारे लिए दोनों आवश्यक हैं परन्तु अविद्या का कार्य विद्या की ओर ले जाना ही है। इसलिए वैदिक ऋषि की दृष्टि वह दृष्टि है जो सोने के आवरण से आच्छादित सत्य अर्थात् विद्या के स्वरूप को उद्घाटित करके हमें जीवन के चरम लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है। वैदिक ऋषि के शब्दों में –

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[७]

–असिस्टैंट प्रोफेसर, ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

७. ईशोपनिषद्/१५

www.thearyasamaj.org

ध्वनि का स्वरूप (भर्तृहरि की दृष्टि में)

–सुश्री मीनाक्षी शर्मा

वैयाकरणों के अनुसार श्रूयमाण वर्ण को ही ध्वनि कहा जाता है। वक्ता जिसका उच्चारण करता है, वह ध्वनि नहीं होती, अपितु वक्ता के मुख से जो शब्द निकलता है उससे उत्पन्न शब्द होता है। वक्ता के द्वारा उच्चरित शब्द वीचितरंगन्याय से दूसरे शब्द को उत्पन्न करके स्वयं विनष्ट हो जाता है। वह भी दूसरे शब्द को उत्पन्न करके स्वयं विनष्ट हो जाता है। इस प्रकार वीचितरंगन्याय से वह श्रोता के कर्ण–कुहर पर्यन्त पहुंच जाता है वही शब्द हमारे हृदय में नित्य विद्यमान स्फोट को जागृत कर देता है अर्थात् जब हम किसी शब्द का कण्ठ, तालु आदि स्थानों के अभिघात से उच्चारण करते हैं तो वह शब्द अन्य शब्दों से भिन्न प्रतीत होता है। जैसे घटरूप शब्द का उच्चारण करने पर जैसी ध्वनि निकलती है वह पटरूप शब्द के उच्चारण से नहीं निकलती है। इस प्रकार ध्वनि ही एक ऐसा तत्त्व है जो स्फोटरूप अव्यक्त शब्द को प्रकट करता है तथा अन्य शब्दों से व्यावर्त करके शब्दविशेष का अर्थ बोध कराता है। यह ध्वनियां शब्द के प्रतिबिम्ब से युक्त होती हैं।

ध्वनि का स्वभाव होता है कि वह शब्द के उच्चारणकाल में क्रमशः क्षीण होती हुई अन्त में नष्ट हो जाती है। आचार्य ने ध्वनि की उपमा मन्द प्रदीप के प्रकाश से दी है। यद्यपि ध्वनि व्यञ्जक होने के कारण दीपक के तुल्य है परन्तु मन्द प्रकाश दूर पड़ने पर क्रमशः क्षीण तथा विलीन हो जाता है, उसी प्रकार ध्वनि की भी स्थिति है अर्थात् हरि आचार्य ने ध्वनि को स्फोटरूपी शब्द का अभिव्यञ्जक माना है। महाभाष्यकार ने प्रतीत पदार्थक ध्वनि को शब्द माना है–

प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते।[1]

इस दृष्टि से ध्वनि और शब्द में कोई भेद नहीं है, किन्तु पाणिनीय सूत्र[2] में भाष्यकार ने ध्वनि शब्द को शब्द का गुण कहा है– **स्फोटः शब्दः ध्वनिः शब्दगुणः** ध्वनि को शब्द के गुण मानने का भाव यह है कि ध्वनि शब्द का व्यञ्जक है।

गौर से देखें तो शब्दत्व और शब्दाकृति में यह भेद है कि शब्दत्व सभी शब्दों में रहने वाला धर्म है, परन्तु शब्दाकृति विशेष शब्द से सम्बद्ध है। यह क्रमशक्ति से उद्बुद्ध एक-एक कर सुनायी देने वाली और उसी क्रम से गृहीत वर्णों से गठित होती है। वर्ण उसमें

१. महाभाष्ये, प्रथमाह्निके, पृ० ४

२. पा० सू० १/१/७०

www.thearyasamaj.org

कल्पित होते हैं, वास्तविक नहीं। शब्द व्यक्तिश: उत्पन्न होते हैं। उनमें स्वयं अपने-आप को अभिव्यक्त करने की क्षमता नहीं होती, परन्तु वे स्फोट को द्योतित करते हैं। स्फोट को द्योतित करने वाले शब्द का नाम ध्वनि है[३]।

श्लोकवार्तिककार के अनुसार स्फोट शब्द है और ध्वनि उसका विस्तार है[४]।

शब्द के अनित्यत्व और नित्यत्व के विचार से भी ध्वनि के रूप में कुछ भेद दृष्टिगत होता है[५]।

अनित्यपक्ष तथा नित्यपक्ष में ध्वनि के स्वरूप में भेद न होकर शब्द अर्थात् स्फोट के स्वरूप में भेद है। अनित्यपक्ष में शब्द पैदा होता है, तब ध्वनि फैलती है। नित्यपक्ष में शब्द ध्वनि से व्यंग्य है। शब्द व्यक्ति को ही स्फोट मानने वाले संयोगविभागज ध्वनिसमूह से उद्‌बुद्ध नाद से व्यंग्य स्फोट को मानते हैं। प्राकृतध्वनि ह्रस्व, दीर्घ आदि की व्यवस्था का और वैकृतध्वनि द्रुतादि वृत्ति व्यवस्था का हेतु है।[६]

भेरीदण्डाभिघात से उत्पन्न ध्वनि दूर तक सुनाई देती है और लोहकंसाभिघात से उत्पन्न ध्वनि नजदीक तक ही सुनाई देती है। ध्वनि की इस महत्ता अथवा अल्पता से शब्द को भी लोकव्यवहार में अल्प या महान् कहते हैं। वस्तुत: शब्द अल्प या महान् नहीं होता। ध्वनि कार्यरूप और कारणरूप दोनों है। उत्तरोत्तर ध्वनियों का पूर्ववर्ती ध्वनियां कारण हैं। पूर्ववर्ती ध्वनियों का उत्तरवर्ती ध्वनियां कार्य हैं। आचार्य भर्तृहरि ने ध्वनि के ग्रहण करने के विषय में पूर्वाचार्यों के मत-मतान्तरों का उल्लेख किया है[७]।

ध्वनि भेद:- ध्वनि दो प्रकार की मानी गयी है। (१) प्राकृत ध्वनि और (२) वैकृत ध्वनि। शब्द नित्य है। उसमें ह्रस्व, दीर्घ आदि भेद नहीं है, परन्तु शब्द को अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्राकृत ध्वनियों का सहारा लेना पड़ता है अत: प्राकृत ध्वनि के काल का शब्द में आरोप किया जाता है। शब्द नित्य होने से व्यवहार का विषय नहीं होता, परन्तु प्राकृत ध्वनि के सम्पर्क में आते ही उसमें प्राकृत ध्वनि के ह्रस्वादि गुण दृष्टिगोचर होने लगते हैं।[८]

वैकृत ध्वनि में द्रुत, मध्यमादि वृत्तियां रहती हैं। उसका स्वभाव घण्टे की मूल ध्वनि के पश्चात् अनुरणनरूप है अत: आचार्य का कहना है कि शब्दाभिव्यक्ति हो जाने पर जो ध्वनियां निकलती हैं, वे वैकृत ध्वनियां होती हैं। उसका प्रभाव स्फोटरूप शब्द पर नहीं

---

३. अनेक व्यक्त्यभिव्यङ्ग्या जाति: स्फोट इतिस्मृता। कैश्चित् व्यक्तय एवास्या ध्वनित्वेन प्रकल्पिता:।। वाक्यपदीयम्, १/९३

४. स्फोट: शब्दो ध्वनि: तस्य व्यायाम उपजायते। श्लोक वार्तिके

५. य: संयोगविभागाभ्यां करणैरुपजन्यते। स स्फोट: शब्दजा: शब्दा ध्वनयोन्यैरुदाहृता:।। वाक्यपदीयम्, १/१०२

६. वही, १/१०३

७. स्फोटरूपाविभागेन ध्वनेर्ग्रहणमिष्यते। कैश्चित् ध्वनिरसंवेद्य: स्वतन्त्रोऽन्यै: प्रकल्पित:।। वही, १/८१

८. वाक्यपदीयम्, १/७६

www.thearyasamaj.org

पड़ता। जैसे- द्रुतादि वृत्तिभेद से उच्चारण करने पर भी 'वही अ' है, वही पद है आदि कहा जाता है उनमें भेद नहीं किया जाता है।[९]

वृषभ के अनुसार ध्वनि की प्रकृति स्फोट है। स्फोटरूपी प्रकृति से उद्‌भूत ध्वनि को प्राकृत ध्वनि कहते हैं। इस ध्वनि के उत्तरकाल में होने वाली ध्वनियां उससे विलक्षण जान पड़ती हैं। वे मानो स्फोट के विकार हैं, इसलिए उन्हें वैकृत ध्वनि कहते हैं।[१०]

हेलाराज के अनुसार प्राकृत ध्वनि स्वगत कालभेद का अवभास कराती है। वैकृतध्वनि जनित वृत्तिभेद भेदक नहीं होता। देवसूरि के मत में प्राकृत ध्वनि वह ध्वनि है जिसके बिना स्फोट की प्रतीति नहीं होती। स्फोट की प्रतीति होने के बाद जिन ध्वनियों से यह वही है (स एव अयम्) इस रूप में देर तक स्फोट की उपलिब्ध होती रहती है, वे वैकृत ध्वनियां हैं।[११]

सभी के मत में ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत का ग्रहण प्राकृतध्वनि का कार्य है और द्रुत, मध्यम तथा विलम्बित वृत्ति में भेद ग्रहण वैकृतध्वनि का कार्य है। व्याकरण दर्शन की दृष्टि से प्राकृत और वैकृत ध्वनि में मौलिक भेद यह है कि प्राकृतध्वनि का स्फोट में अध्यारोप होता है, पर वैकृत ध्वनि का स्फोट में अध्यारोप नहीं होता।

वास्तव में देखा जाय तो स्फोट को ग्रहण करने का साधन प्राकृतध्वनि है और उसके वृत्तिभेद का कारण वैकृत ध्वनि है अर्थात् जब शब्द उच्चरित होता है तो उसमें जो प्राकृत-ध्वनि होती है। उससे शब्द का ज्ञान होता है जिसे बुद्धि ग्रहण कर लेती है। उसके बाद प्रतिध्वनि के रूप में निकलने वाली ध्वनि से शब्द की शीघ्र विलम्बादि वृत्तियों का ज्ञान होता है।

इस प्रकार देखते हैं कि आचार्यों ने ध्वनि के उपर्युक्त भेद तो किये हैं, परन्तु दोनों एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं क्योंकि प्राकृत-ध्वनि का विकार रूप ही वैकृत ध्वनि है। अत: विकार होने से दोनों में पूर्णत: भेद नहीं हो सकता।[१२]

ध्वनि और स्फोट:- ध्वनि को स्फोट का व्यञ्जक माना है अत: प्रत्येक स्फोटरूपी शब्द से जो ज्ञान होता है वह स्पष्ट नहीं होता है। अत: इस अस्पष्ट को स्पष्ट करने के लिए ध्वनियों का अवलम्बन लिया जाता है। अत: ध्वनि द्वारा ही स्फोटरूप शब्द के स्वरूप का निर्धारण होता है।[१३]

संसार में प्रत्येक द्रव्य के विषय में नियम है जैसे प्रत्येक गन्ध की प्रत्येक द्रव्य के साथ संयोग से अभिव्यक्ति नहीं होती है। यथा कुंकुम के गन्ध की अभिव्यक्ति गाय के घी से ही होती है अन्य से नहीं। इसी प्रकार से प्रत्येक ध्वनि से प्रत्येक शब्द की अभिव्यक्ति नहीं होती है।

---

९. वाक्यपदीयम्, १/७७
१०. वृषभ, वाक्यपदीयम् १/७७
११. स्याद्वादरत्नाकारे, ४/१०
१२. परमलघुमञ्जूषायाम्, स्फोटनिरूपेण
१३. वाक्यपदीयम्, १/८३

www.thearyasamaj.org

स्थूल एवं मूर्त पदार्थों में देशकालादि भेद देखे जाते हैं, परन्तु ध्वनि तथा स्फोट मूर्त पदार्थ नहीं हैं। उनमें देश-कालादि भेद नहीं होते। ये दोनों आकाश में रहते हैं। आकाश नित्य है अत: इनके देशादि भेद नहीं हो सकते। ध्वनियां नाना देशों में रहें परन्तु ध्वनियों से अभिव्यक्ति तो स्फोटरूप शब्द की ही रहती है।[१४]

कुछ आचार्य शब्दाभिव्यक्ति ही ध्वनि के माध्यम से मानते हैं।[१५] इनका मत है कि ग्राह्य तथा ग्राहक में यह योग्यता नियमित देखी जाती है कि जैसे आंख रूप को ही दिखा सकती है, रस, गन्ध आदि को नहीं। इसी प्रकार यह बात सभी इन्द्रियों पर लागू होती है। उसी प्रकार स्फोट और ध्वनि में भी नियमित व्यंग्यव्यंजक भाव सम्बन्ध है।[१६] अत: गौ रूप शब्द को जो ध्वनि व्यक्त करती है, वह हस्ति शब्द की ध्वनि नहीं कर सकती।

स्फोटरूप शब्द का कोई क्रम या भेद नहीं है जैसाकि चन्द्रमा में चञ्चलता नहीं है परन्तु जल में चञ्चलता के कारण उसमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमा भी चञ्चल दिखाई देता है। उसी प्रकार निर्विकार स्फोट ध्वनि द्वारा व्यंग्य होने के कारण ध्वनि की अभिव्यक्ति के क्रम तथा भेद से स्वयं क्रमवान् तथा भेद वाला प्रतीत होता है। अत: शब्द के वर्णादि भेद ध्वनि के कारण हैं।[१७] अन्यत्र भी कहा है।[१८]

आधुनिक ध्वनिवादी आचार्यों ने काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में ध्वनि को स्वीकार किया। इन्होंने अपने ध्वनिसिद्धान्त की मूल प्रेरणा वैयाकरणों के स्फोट सिद्धान्त से ग्रहण की थी। जैसे आनन्दवर्धन आचार्य ने 'ध्वनि' के लक्षण में उक्त 'सूरिभि: कथित:' पदों की वृत्तिभाग में व्याख्या करते हुए कहा है।[१९]

इसकी पुष्टि आचार्य मम्मट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में उत्तमकाव्य अर्थात् ध्वनिकाव्य के लक्षण में आये 'बुधै:' पद की वृत्तिभाग में व्याख्या करते हुए स्पष्ट की है।[२०]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ववर्ती तथा परवर्ती सभी आचार्यों ने स्फोट तथा ध्वनि के मध्य में घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया है अर्थात् दोनों को पूर्णत: अलग नहीं कर सकते हैं।

—वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राजस्थान)

१४. वाक्यपदीयम्, १/९६
१५. वही, १/८०
१६. वही, १/९७
१७. वही, १/४८
१८. वही, १/४९
१९. ध्वन्यालोके, प्रथमानने कारिका १३, वृत्तिभागे
२०. काव्यप्रकाशे, प्रथमपरिच्छेदे, ४ वृत्तिभागे

www.thearyasamaj.org

रामायणकालीन कूटनीति के दो प्रमुख अंग (दूत और गुप्तचर)

–श्री राजकुमार

दूत व्यवस्था– वाल्मीकि के अनुसार दूत राज्य का औपचारिक प्रतिनिधि होता है। कौटिल्य ने दूत को राजा का मुख कहा है। मनुस्मृति में उल्लेख मिलता है कि राजा अपनी बात या कोई सन्देश अन्य राजा को कहना या सुनाना चाहता है तो उसे दूत के माध्यम से लिखित एवं मौखिक रूप से व्यक्त करता था। वस्तुत: राजा के लिए दूत ही उनकी आँखें हैं।[1] राजा को चार नेत्रों वाला कहा गया है अर्थात् राजा अपनी आंखों के अतिरिक्त अपने दूतों के माध्यम से विभिन्न जानकारियां प्राप्त कर सकता है। महर्षि पाणिनि के अनुसार राजशासन में दूत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके अनुसार जिस देश में जो दूत नियुक्त होता था उसी के नाम से उसकी संज्ञा दी जाती थी। यथा-कौशल जनपद का दूत मथुरा में नियुक्त होने पर उसे माथुर कहा जाता था।

दूत की महत्ता- वर्तमान राजनीतिक एवं कूटनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में 'राजदूत' की भूमिका के सदृश ही प्राचीन काल में भी पड़ोसी राज्यों एवं अन्य राज्यों के साथ बेहतर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी 'दूतों' का ही आश्रय लिया जाता था। दूत ही राजा द्वारा कहे निर्देशों के आधार पर अन्य राजाओं से सन्धिवार्ता करने में सक्षम था। यहां तक कि दूत को यह भी अधिकार था कि वह परिस्थिति के अनुसार युद्ध अथवा सन्धि की घोषणा कर सकते थे। राजा द्वारा दूत के माध्यम से ही अन्य राजा से सहायता अथवा सहयोग प्राप्त किया जाता था। किसी विशेष अवसर जैसे राज्याभिषेक, यज्ञ, स्वयंरादि आयोजनों के लिए विभिन्न राजाओं एवं अन्य विशिष्टजन को आमन्त्रित करने का माध्यम भी दूत ही बना करते थे। मनु ने दूत की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'वह शत्रु से मेल करा देता है और मिले हुए लोगों में परस्पर फूट डाल देता है।[2]

दूत की श्रेणियाँ- वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड के छठे सर्ग के अनुसार संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं-[3]

१. **पुरुषोत्तम**- राजा के प्रति भक्ति और प्रेम के कारण अत्यन्त दुष्कर कार्य को भी करने

१. मनुस्मृति, ९/२५६ २. वही, ७/६६ ३. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, १.७/१०

www.thearyasamaj.org

वालों को इस श्रेणी में रखा गया है। इस प्रकार के दूत/सेवक अपने स्वामी के प्रति निष्ठा, भक्ति एवं प्रेमभाव के कारण आपराधिक हत्या, ज़हर देना इत्यादि कार्य भी दूत कर्म के साथ करते थे।

२. **मध्यम**- इस श्रेणी के दूत स्वयं निर्णय लेने का अधिकार रखते थे। ये केवल राजा के निर्देशों के अनुसार ही नहीं चलते थे और उनके द्वारा लिये गये निर्णयों को राजा द्वारा मान्यता दी जाती थी।

३. **अधम**- इस प्रकार के दूत अपेक्षित कार्य करते समय निर्देशों का पालन भली प्रकार से नहीं करते थे।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में हनुमान् ने कहा है- 'जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, उन्हें संदेशवाहक अथवा दूत बनाकर नहीं भेजा जाता, अपितु साधारण कोटि के लोग ही इस कार्य के लिए भेजे जाते हैं।' इससे यह ज्ञात होता है कि सन्देशवाहक को निम्नकोटि के दूतों में गिना जाता था और तत्कालीन व्यवस्था में दूतों के अनेक प्रकार थे। दूत को प्रतिष्कर्ष की संज्ञा भी दी जाती थी। समाचार लेकर जाने वाले दूत को 'धावन' कहते थे।

दूत की विशेषताएँ- महर्षि वाल्मीकि के अनुसार दूत को अपने देश का निवासी, विद्वान्, उच्च विचारों वाला, गुणवान् और अन्य व्यक्ति के सम्भाषण को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने में निपुण होना चाहिए।[४] उसे सहनशील, उत्साहित शक्ति एवं अपनी बात को सद्भावना पूर्ण ढंग से कहने की योग्यता होनी चाहिए। दूत को स्वामी के निर्दिष्ट कार्यों को करने की क्षमता तो रखनी ही चाहिए साथ ही वह अपनी बुद्धि के अनुसार भी राजा एवं राज्यहित में काम करे। दूत की सबसे बड़ी विशेषता मधुरवाणी और विवेकसम्मत उपयोग माना है। दूत के द्वारा अविवेकपूर्ण ढंग से किये गये कार्यों की निन्दा भी की गई है। रामायण के सुन्दरकाण्ड में उल्लेख आया है कि दूत द्वारा अविवेक पूर्ण ढंग से किये कार्यों से राजा और मन्त्रियों द्वारा सुनिश्चित किया गया विचार/कार्य भी सिद्ध नहीं हो पाता है।[५]

दूत की उपयोगिता- रामायणकालीन व्यवस्था में दूत का प्रमुख कार्य सन्देश लेकर आना तथा सन्देश देकर आना था। इसके अतिरिक्त दूत को गुप्तचरी का कार्य भी करना पड़ता था। इस समय दूत के कार्य राजनीतिक व कूटनीतिक थे। रामायण में हनुमान् ने लंका में गुप्तचर का कार्य किया था किन्तु विपरीत परिस्थिति को समझते हुए उन्होंने स्वयं को दूत बताकर कठोर दण्ड से मुक्ति प्राप्त की।[६] वास्तव में इस काल में दूत का प्रमुख कार्य राजा का सन्देश अन्य राष्ट्र में पहुंचाना और

४. वाल्मीकि रामायण, १००/३५

५. वही, सु.का., २/३९-४०

६. वही, सु. का., ५०/१९, ५३/२

www.thearyasamaj.org

अन्य राष्ट्र की जानकारियां अपने स्वामी तक पहुंचाना था। दूतों के माध्यम से ही शासकों को शत्रु-मित्र राष्ट्र की शक्तियों एवं कमजोरियों का भास होता था। दूत की उपयोगिता परस्पर मधुर सम्बन्ध बनाये रखने, सन्धि इत्यादि के अतिरिक्त शत्रु को चुनौती देने में भी थी। जैसा कि रामायण में प्रसंग मिलता है कि राम ने अंगद के माध्यम से रावण को चुनौती भिजवाई थी कि वह भगवती सीता को लेकर नहीं आया तो उसे राम के तीखे बाणों का सामना करना पड़ेगा। इसी प्रकार युद्धकाण्ड में उल्लेख प्राप्त होता है कि रावण ने भी शुक नामक दूत को राम और सुग्रीव की मित्रता में फूट डलवाने के लिए भेजा था।[७] दूत को शिष्टाचार का ज्ञान होना परमावश्यक था इसी के फलस्वरूप दूत के लिए यह अनिवार्य था कि वह सर्वप्रथम शत्रु राजा को स्वयं का परिचय देवे और उसके बाद अपने राजा को सन्देश ज्यों का त्यों सुना दे। इसमें न तो एक भी शब्द बढ़ाये और न ही घटाए।[८] रामायण के युद्धकाण्ड में श्रीराम के दूत के रूप में अंगद ने लंका में जाकर रावण की सभा में ऐसा ही किया था।

दूत के विशेषाधिकार- प्राचीन साहित्य में दूत को प्राप्त कुछ विशिष्ट अधिकारों का उल्लेख भी मिलता है तदनुसार दूत का सबसे प्रमुख अधिकार उसका अवध्य होना है। राजनीति विषयक ग्रन्थों में लेखकों ने दूत के अवध्य होने के अधिकार का समर्थन किया है। कार्य के महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही राजदूत की विद्वत्ता तथा व्यक्तिगत गुणों के साथ-साथ उसके पदानुरूप अतिथिसत्कार करते हुए उच्चतम सम्मान देना राज्य का कर्त्तव्य था। दूत के अवध्य होने के पीछे मजबूत तर्क दिया गया है कि वह अपनी इच्छा से न जाकर अपने राजा के आदेश की अनुपालनार्थ परराष्ट्र में जाता है। अत: वह वध्य नहीं है। वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में कहा गया है- **दूत सदा पराधीन होता है** अत: वह वध के योग्य नहीं होता। दूत का वध करना धर्मविरुद्ध है। जैसा कि उल्लेख आया है हनुमान् द्वारा लंका में पहुंचने और रावण के सैनिकों द्वारा पकड़े जाने पर रावण ने क्रोधवश हनुमान् के वध की आज्ञा दी तब विभीषण का कथन था कि सज्जनों के कहे अनुसार दूत कभी वध्य नहीं होता।[९] इसके विपरीत रामायण में यह भी कहा गया है कि जो दूत स्वामी के आदेश के बिना स्वेच्छा से परराष्ट्र को कोई सन्देश/सूचना देता है तो वह विश्वासघाती होने के कारण मृत्युदण्ड का अधिकारी होता है।

गुप्तचर व्यवस्था

गुप्तचर शब्द का आशय- संस्कृत-हिन्दी शब्दकोशों में 'गुप्तचर' का अर्थ जासूस,

७. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड ,२०/७, २५/२१

८. वही, युद्धकाण्ड, ४१/७६-७७

९. वही, सु.का., ५२/२१, १३

www.thearyasamaj.org

छिपकर घूमने वाला बताया गया है।[१०] 'जासूस' शब्द उर्दू भाषा से लिया गया है। वाल्मीकि के अनुसार 'चर' गुप्त प्रतिनिधि होता है। प्राचीन शास्त्रों में गुप्तचर के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है। यथा-चर, चार, प्रणिधि, पसर्प इत्यादि। ऋग्वेद में गुप्तचर को 'स्पश' कहकर पुकारा गया है तो मनु, कौटिल्य एवं शुक्रनीतिसार में इसे क्रमशः माया, गूढ़ पुरुष तथा गूढ़चार शब्दों से जाना गया है। संक्षेप में कहा गया है कि जो तरह-तरह के वेश धारण कर सके, जिसका परिवार हो, बहुत सारी भाषाओं का जानकार हो, दूसरे के अभिप्राय को समझने वाला राजभक्त, राजा में आस्था रखने वाला, चतुर, निर्भय, निडर मनुष्य गुप्तचर कहा जा सकता है। प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था में अन्ताराष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्धारण एवं पालन में दूतों की तरह ही गुप्तचरों का भी विशेष योगदान माना गया है।

गुप्तचरों का महत्त्व एवं प्रकार- रामायण के अरण्यकाण्ड में कहा गया है कि जो राजा राज्य की देखभाल के लिए गुप्तचरों को नियुक्त नहीं करता वह राजा अपनी प्रजा के स्नेह से उसी प्रकार दूर हो जाता है जैसे हाथी नदी के कीचड़ से दूर रहते हैं।[११] इसी प्रकार अग्निपुराण में चर का उल्लेख इक्कीस सदस्यीय विभाग के रूप में और उसका चित्रण 'राजा के नेत्र' के रूप में किया गया है। रामायण में इस विषय पर और अधिक रौशनी डालते हुए कहा गया है कि गुप्तचर द्वारा यदि शत्रु की गतिविधि का पता चल जाए तो बुद्धिमान् राजा थोड़े से प्रयत्न के द्वारा युद्ध में उसे धर-दबाते और मार-भगाते हैं। गुप्तचरों को युद्ध एवं शांति उभयकालों में ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। शान्तिकाल में गुप्तचरों का कार्य साम्राज्य के विभिन्न भागों से महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ एकत्र करना था जो कि राजा के कुशल शासन-संचालन में सहयोगी सिद्ध होती थीं। युद्धकाल में इनकी भूमिका निर्णायक मानी जाती थी क्योंकि इन्हीं के द्वारा दुश्मन की वास्तविक स्थिति, उसकी सेना और शक्ति का ज्ञान होता था।

गुप्तचरी के कार्य को ध्यान में रखते हुए इनके दो प्रमुख भेद किये जा सकते हैं- नागरिक गुप्तचर एवं सैनिक गुप्तचर। नागरिक गुप्तचरों की नियुक्ति प्रशासनिक आन्तरिक व्यवस्था को बेहतर बनाए रखने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी। सैनिक गुप्तचरों का काम और भी अधिक महत्त्वपूर्ण एवं जोखिम भरा होता था। ये अपने देश में होने वाले षडयंत्रों की खोज खबर रखते थे और अन्य देशों की भीतरी सैनिक योजनाओं की जानकारी प्राप्त करना भी इनका प्रमुख काम था। रामायण में हनुमान् द्वारा रावण के गुप्तचरों का वर्णन इस तरह किया गया है- उनमें से कोई योग की दीक्षा लिए हुए, कोई जटा बढ़ाए, कोई मूँड-मूँडाए,

१०. वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ-३४८

११. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड-३३/१०५

www.thearyasamaj.org

कोई गो-चर्म या मृग-चर्म धारण किये और कोई नंग-धड़ंग थे। कोई मुट्ठीभर कुशों (बालों) को ही अस्त्र रूप धारण किए हुए थे। कोई एक आंख वाला था, तो कोई बहुरंगी था। विभिन्न प्रकार की वेशभूषा और अलंकारों को धारण किए हुए इन गुप्तचरों के पास अनेक प्रकार के हथियार भी थे। सम्भवत: रामायण ऐसा प्रथम काव्य है, जिससे शुक्र, सारण, शार्दूल, अनल, सरभ, सम्पाति और प्रभास नामक गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है।

गुप्तचरों की विशेषताएँ- वाल्मीकि ने रामायण में गुप्तचरों को विभिन्न गुणों से युक्त मानते हुए कहा है कि वे सभी गुप्तचर विश्वासपात्र, शूरवीर, धीर और निर्भय थे। रामायण में राम ने गुप्तचर हनुमान् के लिए कहा है- शारीरिक बल, शूरता, शास्त्र ज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, उत्तमदक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य स्थिरता, विनय और अन्य बहुत से सुन्दर गुण केवल तुम्हीं में एक साथ विद्यमान् हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। गुप्तचरों की यह भी विशेषता होनी चाहिए कि वे शत्रु शासक को भली प्रकार जान-समझकर उसमें फूट डलवा देने में निपुण हों। गुप्तचरों को चरित्रवान्, विश्वसनीय एवं आज्ञाकारी होना चाहिए। गुप्तचर को उच्च कुल, राजभक्त, विश्वासपात्र, वेश-बदलने में माहिर, विभिन्न राज्यों की भाषा-संस्कृति, परम्पराएँ, रीति-रिवाज आदि जानने में चतुर, विधि कलाओं में पारंगत व अपने पक्ष के विचारों को जानने-समझने में कुशल होना चाहिए।[१२] साररूपेण कहा जा सकता है कि गुप्तचरों को चरित्रवान्, कुलीन, चतुर, विश्वासी दूसरे के विचारों को भली प्रकार समझने वाला, मृदुभाषी, ज्ञान-विज्ञान व ललित कलाओं में निपुण, वेश बदलने में दक्ष, स्वांग-नाटक रचने में कुशल इत्यादि विशेषताओं एवं योग्यताओं से युक्त होना चाहिए।

गुप्तचरों के कार्य- राज्य के सफल संचालन और आन्तरिक सुरक्षा को सुचारू बनाए रखने में दूतों के साथ-साथ गुप्तचरों का भी विशेष योगदान रहता था। युद्ध अथवा शान्ति उभयकाल में इनके ऊपर महत्त्वपूर्ण कार्य करने का दायित्व रहता था। शान्तिकाल में गुप्तचरों का काम राज्य के विभिन्न भागों से महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ एकत्रित करना था जो कि राजा को कुशल संचालन करने में उपयोगी होती थीं। राजा अपने गुप्तचरों के माध्यम से ही प्रजा की आवश्यकता, स्थिति, मनोभाव, राजा के प्रति विचार आदि को जानने की कोशिश करता था। युद्धकाल के दौरान गुप्तचरों की भूमिका अति आवश्यक होती थी। इस दौरान गुप्तचरों को शत्रु के मजबूत एवं कमजोर पक्षों का सटीक आकलन करना होता था जैसे- सैनिकों की संख्या, मनोकुल मन्त्री के बारे में

१२. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड- ११३/२७-२८१

१२. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड- सर्ग ११३/२७-२८

www.thearyasamaj.org

जानकारी, सेना के प्रमुख योद्धा, आने का मार्ग, मार्ग में आने वाली विभिन्न कठिनाइयाँ अथवा समस्याएँ, शत्रु का उद्देश्य, उसकी योजना, आकांक्षा, शत्रुपक्ष के प्रधान सेनापति, अस्त्र-शस्त्र इत्यादि युद्ध सम्बन्धी अनेक आवश्यक जानकारियों को जुटाना गुप्तचरों का ही दायित्व होता था। रामायण में उल्लेख मिलता है कि राम के गुप्तचर अनल, पनस, सम्पाति और प्रभाति ने भी लंका में जाकर शत्रु (रावण) की सेना की उपयुक्त जानकारी राम को दी थी।

गुप्तचरों के प्रति व्यवहार- वाल्मीकि ने रामायण में गुप्तचरों के प्रति अनेक प्रकार के व्यवहार का संकेत किया है। रामायण के निर्देशानुसार गुप्तचर के पकड़े जाने पर उसे निर्दयता से पीटा जाता था। शार्दूल को वानरों के सैन्यदल के सामने खींचते-घसीटते और धक्का देते हुए लाया गया। वानरों ने उस पर लात, घूंसे, दांतों से काटने और थप्पड़ मारते हुए हिंसात्मक प्रहार किये। शत्रुपक्ष द्वारा पकड़ लिये जाने पर गुप्तचरों से अभद्र व्यवहार किया जाता था, उन्हें लातों और घूसों से मारा भी जाता था उनकी आँखें भी फोड़ी जा सकती थीं। सामान्यत: संकटकाल में गुप्तचर के पकड़े जाने पर उसे जान से भी मार दिया जाता था। जब रावण के गुप्तचर शुक और सारण पकड़ लिये गये थे तब वे जीवन के प्रति आशा खो चुके थे। एक अन्य उदाहरण में जब हनुमान् ने लंका में गुप्तचर के रूप में प्रवेश तो किया लेकिन रावण द्वारा जब इस कृत्य के लिए हनुमान् के वध का आदेश दिया तो उन्होंने स्वयं को राम का दूत बताकर मृत्युदण्ड से मुक्ति पायी।[13] अन्त में निष्कर्षरूप कहा जा सकता है कि इस काल में गुप्तचरों के प्रति कठोर व्यवहार के रूप में मारपीट, अंग-भंग तथा मृत्युदण्ड तक भी देने का विधान था।

रामायण महाभारत आदि शास्त्रों से स्पष्ट है कि दूत एवं गुप्तचरी का कार्य प्रत्येक काल में अत्यन्त जिम्मेदारी और जोखिमभरा रहा है। प्राचीनकाल से लेकर अद्यावधि राष्ट्र के प्रति समर्पित एवं निष्ठावान् सैनिकों द्वारा इस महत्त्वपूर्ण काम के द्वारा देशसेवा की जाती रही है। यह भी सत्य है कि वर्तमान काल की भाँति प्राचीनकाल में तकनीक एवं सुविधाओं का नितान्त अभाव होने के बावजूद राष्ट्रसेवक अपनी बुद्धि, बल और कौशल का समुचित प्रयोग करते हुए इस कार्य को अंजाम देते थे। आधुनिक युग में सूचना, तकनीकी एवं यातायात के क्षेत्र में हुई अभूतपूर्व उन्नति से इस कार्य में संलग्न सैनिकों, दूतों एवं गुप्तचरों को सहायता अवश्य मिल रही है, लेकिन उनके जीवन पर संकट तो सदैव मँडराता ही रहता है।

-शोधार्थी (इतिहास-विभाग) राजकीय डूंगर महाविद्यालय,
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज.) मोबा. ०९७८५६-६५३४६

१३. वही, युद्धकाण्ड - सर्ग २०, २५ व ५०

www.thearyasamaj.org

वैदिक ईश्वरवाद की विशेषता

–श्री जितेन्द्र कौशिक

वैदिक ईश्वरवाद की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वेद में ईश्वर को एक माना गया है। वेद में ऐसे अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं जो निर्विवाद रूप से परमात्मा की एकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। वेद में एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन होने पर भी पाश्चात्त्य विद्वान् वेदभाष्य की सम्यक् प्रणाली समझे बिना वेद में बहुदेवतावाद की कल्पना करते हैं, जो कि सर्वथा असङ्गत है।

सच्चाई यह है कि वेद का अर्थ करने के लिए यौगिक रीति का अवलम्बन किया जाता है। जो वेद के शब्दों को रूढ़ मानकर अर्थ समझने का प्रयत्न करेगा वह वेदार्थ नहीं जान सकता। जैसे –लोक में 'हस्ती' का अर्थ हाथी है। इसी हस्ती शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी हुआ है। वहाँ कहा गया है कि हस्ती सोम औषधी में से सोमरस निकालते हैं। यथा – **अंशुं दुहन्ति हस्तिनः।**[१] यहां हस्ती का अर्थ यदि हाथी लिया जाए तो कहना होगा कि इस मन्त्र का ऋषि भ्रम में है या कि हाथी भी सोमयाग करते हैं। 'हस्ती' अर्थ को यौगिक मानने पर 'हाथ वाले' होगा। ऋग्वेद में इन्द्र देवता को महाहस्ती कहा गया है। यथा– **आतू न इन्द्र क्षमन्तं चित्रं ग्रामं सङ्गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन ।।**[२]

प्रस्तुत मन्त्र में महाहस्ती का अर्थ बड़ा हाथी किया जाए तो महान् अनर्थ होगा। अब यौगिक अर्थ करने पर 'हस्ती' हाथ वाला होगा। ऋत्विक् हस्ती हैं क्योंकि उन के हाथ होते हैं। इन्द्र अर्थात् देव या परमात्मा महाहस्ती हैं, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् हैं। ऋग्वेद में बहुत से मन्त्र इस कथन की पुष्टि करते हैं।[३]

वैदिक ईश्वरवाद की दूसरी विशेषता है कि वेद परमात्मा को निराकार मानता है। निराकार होने के साथ ही परमात्मा इन्द्रियातीत है। जब जीवात्मा इन्द्रिय और मन के सम्बन्ध को त्यागकर एकाग्रवृत्ति से अन्तर्मुख हो जाता है, तब वह परमात्मा का साक्षात्कार करता है।

१. ऋग्वेद, ३.३६.७

२. वही, ७.७१.१

३. वही, १.१६४.४६

www.thearyasamaj.org

यथा यजुर्वेद में परमात्मा के निराकार विषय में कहा गया है।[४]

तीसरी विशेषता यह है कि वेद में परमात्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप माना गया है। वह सत्, चित् और साक्षात् आनन्दस्वरूप है। परमात्मा की सत्ता व्यापक है और उस सत्ता में ज्ञान और आनन्दस्वरूप समान रूप में विद्यमान हैं। इसमें कदापि किसी काल में वृद्धि या ह्रास नहीं होता। अत एव यह परमात्मा का स्वरूप लक्षण है।

चौथी विशेषता यह है कि वेद में परमात्मा (ईश्वर) को दयालु, परोपकारी, न्यायकारी माना गया है। ऋग्वेद के अनुसार परमेश्वर ही सब का राजा और धर्मकार्यों का श्रेष्ठ अध्यक्ष है अर्थात् यथाकर्म सबको फल देता है।[५]

वैदिक ईश्वरवाद की पांचवी विशेषता है कि इसमें परमात्मा को सर्वशक्तिमान् माना गया है। अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा न्यायानुकूल जीवों के कर्मफल प्रदान करने में उसको किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं होती। इसीलिए वह सर्वशक्तिमान् है।

वैदिक ईश्वरवाद की छठी विशेषता यह है कि ईश्वर अर्थात् परमात्मा सर्वव्यापक है। जैसा कि अथर्ववेद में आया है -

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति,
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा,
तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥[६]

अर्थात् ईश्वर प्राणियों के गुप्त से गुप्त कर्मों को सर्वथा जानता और उनका यथावत् फल देता है। इसी प्रकार सैकड़ों मन्त्रों में परमात्मा की सर्वव्यापकता, श्रेष्ठता का सिद्धान्त बड़े स्पष्ट शब्दों में घोषित किया गया है।

–शोधच्छात्र, वी.वी.बी.आई.एस.एण्ड आई.एस. (पी.यू.), साधु आश्रम, होशियारपुर।

४. यजुर्वेद, ४०.८

५. ऋग्वेद, ८.४३.२४

६. अथर्ववेद, ४.१६.२

एक याचना दिल से ....

- श्रीमती प्रेमबिन्द्रा

हे मेरे राम जी! आप का ध्यान सिमरन में बैठते-२ कई साल बीत गए। ऐसा करते-करते कितने जन्म बीत गए, कुछ पता ही नहीं। जिस भावना से मैं अपनी मांगो की लम्बी लिस्ट आप के आगे रखती गई, पाठ-पूजा का सिलसिला उसी तरह चलता रहा और मेरी मांगो की सूची और बढ़ती गई। सारी उम्र न मैं मांगते थकी, न तुम देते थके। हर-दिन हर-पल मैं नई मांग ले कर सुबह होते ही आपके समक्ष आ जाती हूं, हे राम जी! आज यह कर दो वो कर दो बस। नहीं जानती आपने किस मांग को किस ढंग से पूरा किया सिर्फ आप ही जानते हो। मैं अपने अनुभव से यह ही जान पाई कि संसार या समाज की भाषा है कलह, दिल की भाषा है प्यार, और आत्मा की भाषा है मौन और आप हैं सर्वशक्तिमान्। भला मैं मूढ़ अज्ञानी यह सब क्या जानूं, मुझे तो बस आप को कष्ट देना ही आता है। ऐसा करते-करते मैं थक चुकी हूं फिर अचानक एक दिन मेरे जीवन की शाम ढ़ल गई, सारा कुछ अस्त-व्यस्त हो गया, मेरा भाग्य बदल गया, मेरे भरे परिवार से एक देवता का स्थान रिक्त हो गया। यह सब कैसे और क्यों हुआ आप ही जानो। मैं आप को कोई दोष नहीं देना चाहती। यह सब मेरे ही कर्मों का दोष है। बस अब आप से एक ही विनती है, कृपया उसे स्वीकार कर लो। बस एक बार सिर्फ एक बार अपनी दिव्य झलक दिखा दो। हे सर्वशक्तिमान्! बस एक तू ही जानता है मैं क्या पाना चाहती हूं। खोया तो मैंने बहुत कुछ है, पर दिल को एक सकून है वो सब तेरा था तू ले गया। मेरा तो कुछ भी नहीं है। बस एक तू ही मेरा है, यह ही मेरे दिल की पुकार है दिल की वेदना है। हे अन्तर्यामी राम धनुषधारी राम! मेरे कानों में अपनी आहट भर दो। पूजापाठ, ध्यान, सिमरन का ढोंग अब मुझसे नहीं होगा। सुख-सुविधाओं का बोझ ढोते-२ मैं थक गई हूं, हे राम जी! अब मुझे अपनी शरण में ले लो, ताकि मैं सत्य को देख सकूं जिस मृत्यु को जीवन कहते हैं उसे पहचान सकूं।

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः !!! ।

-बिन्द्रा निवास, सिविल लाईन, माहिलपूर अड्डा, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

पुस्तक-समीक्षा

उपनिषद् अनुभूतियाँ

(एकादश उपनिषद् प्रवचनमाला)

पृष्ठ-२९८

लेखिका-कृष्णा चौधरी, एम.ए., एम.एड, १०९/१६, पंचकूला (हरियाणा)

मैंने विदुषी कृष्णा चौधरी द्वारा गद्य-पद्यमयी भाषा में अनूदित उपनिषद्-अनुभूतियाँ नामक पुस्तक को कहीं बड़ी गहराई से पढ़ा और कहीं पर विहङ्गम दृष्टि से अवलोकन किया। इसमें विदुषी लेखिका ने अपने जीवन की अनुभूतियों तथा उपनिषदों के आध्यात्मिक तथ्य को ही प्रस्तुत किया है। उन्होंने प्रस्तुतिकरण केवल लिखित रूप से ही नहीं अपितु गायन द्वारा भी जनसामान्य के हृदय तक पहुँचाया। जैसा कि पुरोवाक् की लेखिका संस्कृत की विदुषी डा. वसुन्धरा रिहानी ने भी इस ओर संकेत करते हुए लिखा भी है- **कृष्णा जी की लेखन-विधा गद्य और पद्यमयी है, वे कविता और गायन के माध्यम से कठिन से कठिन विषय या भाव को भी अत्यन्त सरस और सहज बना देती हैं।**

विदुषी लेखिका की यही विशेषता इस ग्रन्थ में देखने तथा पढने को मिली है। उपनिषद्भाष्य तो भारत में ही आदिगुरु शंकराचार्य से लेकर आजतक न जाने कितने विद्वानों द्वारा किन-किन सम्प्रदायों का सहारा लेकर किए गए हैं और उपलब्ध भी हैं; किन्तु इस ग्रन्थ की यह एक विशेषता है कि लेखिका ने अपने ज्ञान के प्रचार मात्र या पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए इस ग्रन्थ को रात-दिन बैठकर नहीं लिखा, अपितु यह ग्रन्थ लेखिका के उन विचारों का पिटारा है, जो विचार लेखिका द्वारा यत्र-तत्र जन-सभाओं में, सत्संग के लिए एकत्रित जनसमूह या विद्वानों की गोष्ठियों अथवा जन-सामान्य के बीच प्रकट किए गए हैं। वस्तुत: लेखिका ने अपनी अनुभूतियों से जनसामान्य के हित के लिए, उनको सन्मार्ग दिखाने के लिए, संसार की वास्तविकता बताने के लिए, संसार में प्रत्येक वस्तु ससार अर्थात् सारवान्, ज्ञानवान् तथा सुखद बन सकती है, यही उपनिषद् के माध्यम से बताने का प्रयत्न किया है। 'संसार' शब्द में विद्यमान बिन्दुरूपी माया के हटने से संसार ही ससार **सारेण सह विद्यमानः**, अर्थात् ज्ञानवान् या सुखमय हो जाता है, क्योंकि सम्पूर्ण दु:खों का कारण तो माया है माया के हटते ही न राग न द्वेष। उसकी वास्तविकता बताना ही उपनिषदों का ध्येय रहा है। इस ग्रन्थ द्वारा यही बताना लेखिका का प्रयोजन रहा है न कि इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ द्वारा किसी प्रकार से अन्य लाभ प्राप्त करना या अपनी प्रतिष्ठा या ज्ञान का प्रदर्शन करना अथवा उसके द्वारा भगवान् के प्रति अगाध श्रद्धा रखने वाले पाठक तथा श्रोताओं से कुछ अर्जित करना। इसी कारण इस ग्रन्थ पर कहीं भी इसके मूल्य को नही दिखाया गया।

जहां तक उपनिषदों के महत्त्व तथा संख्या

www.thearyasamaj.org

का प्रश्न है, यह तो निर्विवाद है कि उपनिषद् आरण्यकों के विशिष्ट अंग तथा वेद के अन्तिम भाग हैं। क्योंकि उपनिषद् वेद के अन्तिम भाग हैं, अत: इनमें उनसे पूर्ववर्ती साहित्य के सारभूत-सिद्धान्त ही विद्यमान हैं। उपनिषद्-साहित्य के विषय में अधिक क्या लिखा जाय यह तो वह मानसरोवर है जिसके अनेक स्रोत समझ लो या धाराएं समझ लो। जो नदियों के रूप में न जाने कब से इस भारतभूमि पर अबाध गति से बह रही हैं। वैदिक धर्म या संस्कृति की मूलरूप प्रस्थानत्रयी में उपनिषदों का सर्वोपरि स्थान है। इसीलिए वेदान्त का लक्षण या उसकी विशेषता बताते हुए **'वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणम्'** कहा गया है। यदि संक्षेप से कहा जाय कि भारत में किसी भी रूप में प्रचलित दर्शनों का मूल उपनिषद् ही हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

उपनिषद् कितनी हैं, इस विषय में कुछ मतभेद पाया जाता है। मुक्तिकोपनिषद् में 108 उपनिषद् गिनाई गई हैं, जिनका विभाजन करते हुए लिखा गया है कि- 10 उपनिषद् ऋग्वेद, 19 शुक्ल-यजुर्वेद, 12 कृष्ण-यजुर्वेद, 16सामवेद और 31 अथर्ववेद से सम्बन्धित हैं। मुण्डकोपनिषद् में दश उपनिषदों को इस प्रकार उद्धृत किया गया है-

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डुक्य तित्तिरः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश।।

किन्तु परम्परा के अनुसार कौषीतकि, श्वेताश्वतर और मैत्रायणी उपनिषद् को भी प्राचीन माना गया है तथा उपनिषदों की गणना में आज भी उनकी मान्यता है, वह इसलिए कि आदिगुरु शंकराचार्य ने दश उपनिषद् के साथ उन को भी अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में स्थान दिया है। पर उन पर भाष्य क्यों नहीं लिखा इसका स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता। इसप्रकार 13 उपनिषद् प्राय: यत्र-तत्र विद्वानों द्वारा ग्राह्य तथा आदरणीय हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखिका द्वारा ऊपर लिखित दश उपनिषद् के अतिरिक्त श्वेताश्वतर उपनिषद् को ग्रहण करते हुए एकादशोपनिषद् को अपने प्रवचनों या ग्रन्थ का विषय चुना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विदुषी लेखिका ने बड़े ही वैदुष्य के साथ उपनिषद्-मन्त्रों का हिन्दी कविता के माध्यम से सरल तथा सुबोध अर्थ करते हुए श्रोता या पाठकों को मन्त्र की ओर उन्हें केवल आकर्षित ही नहीं किया अपितु उनके हृदय में उसके भाव को भरते हुए तदनुरूप चलने या कार्य करने के लिए प्रेरित भी किया है- जैसे ईशोपनिषद् के प्रथम मन्त्र को ही कविताबद्ध करते हुए लिखा कि-

अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी इधर-उधर
जगत में आप सबको देता है दिखाई।
उस सर्वाधार-सर्वनियन्ता-सर्वशक्तिमान्-
कल्याण स्वरूप की
समस्त शक्तियां इस सृष्टि में ही हैं समाई।
इस तरह यह विधाता कण-कण में है समा रहा।

लेखिका ने बड़े ही सुन्दर और सरल कवितामयी भाषा में प्रथम मन्त्र का अर्थ स्पष्ट किया। जिसको साधारण से साधारण पाठक या श्रोता विना किसी सन्देह के हृदयंगम कर लेता है।

यहाँ इतना अवश्य लिखना चाहूँगा कि कई बार हम छन्द या अभ्यास के प्रवाह में आकर किसी ऐसे शब्द का प्रयोग कर बैठते हैं कि उससे

पाठक या श्रोता को कुछ भ्रांति हो जाना स्वाभाविक है, किन्तु उसके स्थान पर किसी अन्य शब्द के पढ़ने से अर्थ में अधिक स्पष्टता हो जाती है। जैसे – **समस्त शक्तियां इस सृष्टि में ही हैं समाई। इस तरह यह विधाता कण-कण में है समा रहा।**

यहां समा रहा के स्थान पर विद्यमान या भासमान होता तो और अच्छा होता क्योंकि यहां परम पिता परमात्मा या विधाता के विषय में कहा ही जा रहा है।

यहां 'समा रहा' इस शब्द के प्रयोग से सहसा भान होता है कि विधाता पृथक् है और सृष्टि का कण-कण पृथक् है और वह विधाता (पृथ्वी के) कण-कण में समा रहा है। यह कुछ अटपटा सा है; क्योंकि पृथ्वी के कण-कण में वह ईश्वर वासित तो है, अर्थात् विद्यमान तो है, या यूँ समझिए कि जिस प्रकार फूल में सुगन्ध विद्यमान तो है पर वह दिखाई नहीं देती, केवल उसका भान ही होता है। इसी प्रकार वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर कण-कण में व्याप्त है। पर दिखाई नहीं देता। सब में व्याप्त होने से कोई भी वस्तु किसी एक की न होकर सबके लिए समान ही होगी। अत: यहां पर 'इस तरह यह विधाता कण-कण में भी समाया है' यहां समाया का सहसा अर्थ प्रतीत होगा कि जैसे भूमि में जल समा जाता है, प्रलय में पृथ्वी जल में समा जाती है, ऐसे ही विधाता कण-कण में समाया हुआ है। वस्तुत: यहां वास्य का अर्थ निकलेगा विद्यमान, व्याप्त या तद्गत जैसे 'बीज' से जब वृक्ष पैदा हो जाता है तो, वह 'बीज' सम्पूर्ण वृक्ष में समा जाता है, व्याप्त हो जाता है। उसकी अपनी पृथक् सत्ता न होकर वृक्षरूप में ही उपस्थिति रहती है। भगवान् कृष्ण ने गीता में इसी बात को स्पष्ट करने के लिए कहा कि-'हे अर्जुन तू मुझे सारे संसार का बीज समझ '**बीजं मा सर्वभूतेषु विद्धि पार्थ सनातनम्**'' क्योकि मैं सारी सृष्टि या सम्पूर्ण प्राणियों का बीज हूँ, इसलिए **सर्वस्य चाऽहं हृदि सन्निविष्टः** अर्थात् सबके हृदय में व्याप्त हूं। प्राणीमात्र या कण-कण में व्याप्त हूँ। इसीलिए वह बीज में वृक्ष के समान व्याप्त होने के कारण कण-कण में भी व्याप्त हैं क्योंकि वह सृष्टि का मूल कारण है, परन्तु आंखों से दिखाई नही देता। मनुष्यों को यही भावना रखकर सांसारिक वस्तुओं का त्यागभाव से अर्थात् विना लगाव के उपभोग करना चाहिए। व्यक्ति का किसी भी वस्तु के प्रति लोभ नहीं होना चाहिए। इसी उपनिषद् के द्वितीय मन्त्र का संक्षेप से सुन्दर भाव जनता के समक्ष रखते हुए लेखिका कहती या लिखती हैं कि-

सदा स्वस्थ, नीरोग और कर्मशील बनकर ही
सौ वर्ष तक जीने की रखो मन में आस।
साथ ही प्रभु की भक्ति शक्ति में
रखो पूर्ण विश्वास।

कितना सुन्दर भाव है कि 100वर्ष तक जीने की इच्छा करो, पर विस्तर/चारपाई पर पड़े-पड़े न रहना पड़े। शरीर का नीरोग होना भी परम आवश्यक है। नीरोग होने पर भी निठुला न बैठे अपितु सतत कर्तव्यकर्म को करता रहे, केवल दिन-रात काम में ही न लगा रहे अपितु जिस परमपिता परमात्मा ने माँ के गर्भ से लेकर आज तक पालन किया है उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उसकी भक्ति अर्थात् उसका प्रतिपल स्मरण करता रहे। यही लेखिका की

www.thearyasamaj.org

विशेषता है कि थोड़े से शब्दों में सब कुछ कह दिया '**मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता**' संक्षिप्त सारमय वचन ही लेखक की बुद्धिमत्ता एवम् वक्तृत्व का परिचायक हुआ करते हैं। इस तरह मन्त्रार्थ को अपनी कवितामयी भाषा में संक्षेप तथा सरलता से बताना लेखिका का वैदुष्य तथा वक्तृत्व-कौशल है। कई स्थानों पर तो लेखिका ने याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी जैसे सम्वाद में वक्ता और श्रोता को सचित्र दिखाते हुए भी अपनी कुशलता का परिचय दिया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी सम्वाद के दार्शनिक तत्त्वों को विभिन्न प्रकार से श्रोताओं या पाठकों के समक्ष स्पष्ट करते हुए उन्होंने अपने ज्ञान, मनन तथा अनुभवों को जितने सरल और स्पष्ट रूप से रखा है इससे अधिक स्पष्ट और कौन रख सकता है। उसी परम्परा में लेखिका ने कितने सरल शब्दों में आत्मा की प्रियता को बताते हुए लिखा कि-

पति पति के प्रयोजन के लिये
नहीं करता पत्नी से प्यार।
अपितु इसीलिए करता है प्यार
क्योंकि आत्मा ही होती है शरीर का आधार।।

इसमें ऋषि ने जो कहा वस्तुतः आज वह लोक में अच्छी प्रकार से घटता दिखाई देता है। जो पत्नी पहले बहुत प्रिय होती है। जब तक वह उसकी आत्मा को अच्छी लगती थी तब तक वही सब कुछ होती है किन्तु जब उसकी आत्मा को वह नहीं अच्छी लगती, तब उसको शत्रु समझकर या तो उसको त्याग दिया जाता है या सर्वदा के लिए संसार से विदा कर दिया जाता है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ को पढकर मैने पाया कि जो कुछ लिखा गया यह केवल बुद्धि का विषय नहीं अपितु हृदय और बुद्धि दोनों का विषय है। क्योंकि लेखिका के जीवन के अनुभव उसके हृदय से निकलकर पुस्तकाकार में दिखाई देते हैं। अतः यह पुस्तक केवल उनके पाण्डित्य की ही नहीं अपितु जीवनभर की तपस्या, त्याग, भक्ति, सरलता, स्वच्छता तथा अनेक ग्रन्थों एवं सत्सगों की परिचायक है। लेखिका के ये अनुभव शब्दों द्वारा पाठकों या श्रोताओं के हृदय तक पहुँचकर उनके हृदय-परिवर्तन करने में निश्चय ही समर्थ हो सकते हैं।

अन्त में बड़ी प्रसन्नता के साथ लेखिका को बधाई देते हुए आशा करता हूँ कि वह अपने जीवन में और भी ऐसे अमूल्य ग्रन्थरत्न को प्रस्तुत कर न केवल साधारण पाठकों अपितु विद्वद्जनों का भी एक बहुत बड़ा उपकार करते हुए मां सरस्वती के भण्डार को ऐसे अन्य अमूल्य रत्न से भरती हुईं पठक तथा पाठकों का महान् उपकार करेंगी। भविष्य में इसी प्रकार अनेक ग्रन्थों की प्राप्ति की कामना करता हुआ-

- प्रो० इन्द्रदत्त उनियाल,
संचालक, वि.वै.शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

दान –

डा० वी०के० कपिला, सीनियर चाईल्ड स्पैशलिस्ट सुतेहरी रोड़, होशियारपुर।	११००
डॉ० वसुन्धरा रिहानी, १६१७, सैक्टर ४४ बी. चण्डीगढ़।	५,०००
डॉ० हरी मित्र शर्मा २६३/२२, हरि नगर, होशियारपुर।	१५,०००
श्री डी.पी. वासुदेव, ६ कूल रोड़, जालन्धर	५००
श्री अतुल विकास शर्मा, सुपुत्र श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा, मंगल भवन, सिविल लाईन, होशियारपुर।	१५००
डॉ० शिव कुमार वर्मा, डिप्टी लाईब्रेरियन वी.वी.बी.आई.एस. एण्ड आई.एस. साधु आश्रम, होशियारपुर।	२०००

हवन-यज्ञ –

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। जनवरी 2017 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

www.thearyasamaj.org

विविध-समाचार

शोक-समाचार- विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर की कार्यकारिणी सदस्य एडवोकेट श्री विजय कुमार मल्होत्रा जी का दिनांक २७-१२-२०१६ को होशियारपुर में अचानक देहान्त हो गया।

एडवोकेट मल्होत्रा जी संस्थान के साथ कई वर्षों से जुड़े हुए थे। आप संस्थान में कभी-कभी आकर संस्थान की गतिविधियों के बारे में जानकारी लिया करते थे। आप संस्थान कार्यकारिणी की मीटिंग में अपने बहुमूल्य सुझाव दिया करते थे। आप मितभाषी, अच्छे वक्ता, भारतीय संस्कृति के मार्ग पर चलने वाले, मृदुभाषी, परोपकारी, मिलनसार, सभी के कार्य करने में तत्पर रहने वाले उदार स्वभाव वाले व्यक्ति थे। सामाजिक कार्यों में निःस्वार्थ रुचि होने के कारण आप नगर की अनेक सामाजिक संस्थाओं के माननीय सदस्य भी थे। इस प्रकार के प्रतिष्ठित व्यक्ति के निधन से परिवार तथा समाज को जो हानि हुई है, उसकी भरपाई नहीं की जा सकती।

प्रभु से प्रार्थना है कि वह दिवंगत पवित्र आत्मा को शान्ति दे, अपनी शरण में ले तथा दुःखी परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

वी.वी.आर.आई. के आजीवन सदस्य श्री मनमोहन सूद जी का १४-१-२०१७ को अचानक होशियारपुर में निधन हो गया। आप रेलवे में कार्य करते हुए सामाजिक कार्यों में भी विशेष रुचि रखते थे। आप संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के कारण आपकी वैदिक साहित्य में विशेष रुचि थी। संस्कृतज्ञ होने के कारण आप का संस्थान से बहुत लगाव था, जब कभी कोई सांस्कृतिक कार्य यहां होता तो आप इसमें निश्चित- रूप से सम्मिलित होते थे। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा शोकाकुल परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

श्रीमती सरिता शर्मा धर्मपत्नी एडवोकेट सजीव कान्त शर्मा, सदस्य वी.वी.आर.आई. कार्यकारिणी, का बहुत कम आयु में ही दिनांक १०-१-२०१७ को होशियारपुर में अचानक निधन हो गया। श्रीमती सरिता शर्मा का स्वभाव धार्मिक तो था ही साथ ही स्वभावतः वे परोपकारी भी थीं। दयालुता, सज्जनता तथा उदारता तो उनके स्वाभाविक गुण थे। जिसके कारण नागरिकों में आपका बहुत सम्मान था। अचानक ही इनके चले जाने से जहां कुटुम्बी-जनों को बहुत दुःख हुआ, वहीं शहरवासियों को भी असह्य कष्ट हुआ। परमात्मा ऐसी आत्मा को अपनी शरण में ले तथा पारिवारिक जनों को इस महान् कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

www.thearyasamaj.org

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०१-२०१७ को प्रकाशित।